निडर होकर वह राजसभा में उपस्थित हुई और कन्या को राजा के चरणों पर उसने रख दिया। इसके उपरान्त वह मुक्तकण्ठ से अभागिनी हारमियोन के निष्कलङ्क चरित्र को प्रतिपन्न करने लगी। वह बोली—"महाराज, आप वृथा भ्रम में पड़े हैं। मैं महारानी हारमियोन को भली भाँति जानती हूं कि वे निष्पाप, और सती साध्वी हैं। उनके नाम पर कलङ्क थोप कर आप ईश्वर के समीप अपराधी हो रहे हैं। यह देखिए, इस कन्या का अवयव ठीक आपही के तुल्य है। अतः आप वृथा सन्देह को दूर कीजिए। कृपादृष्टि से सरला सहधर्मिणी और उनके गर्भ से उत्पन्न हुई इस कन्या को देखिए"। परन्तु भाग्य के प्रतिकूल होने के कारण पालिना के इस सविनय अनुयोग का फल विपरीत हुआ! राजा लियांटिस और भी क्रोधित हुए और पालिना के स्वामी ऐण्टिगोनस को उन्होंने आज्ञा दी—"इसी क्षण इस प्रगल्भा स्त्री को यहां से निकाल दो।"

पराये दुःख से दुःखित पालिना तो भी एक दम निराश नहीं हुई; रानी हारमियोन की कन्या को राजा के सामने रखकर वह चली गई। उसने विचारा कि सबों के चले जाने पर कदाचित् राजा के हृदय में दया का सञ्चार हो। तब चाहें तो वे निर्दोष शिशु को कृपादृष्टि से अवलोकन कर सकते हैं।

किन्तु होनहार कुछ और ही था। पालिना की समझ में यह नहीं आया कि, उसकी उस बड़ी आशा पर अलक्ष्य भाव से भाग्य उपहास कर रहा है!

सिसिलिया के राजा, रानी पर अत्यन्त क्रोधित थे; इसलिए उनके हृदय से दया ममता का लोप हो गया था। पालिना के चले जाने पर उन्होंने ऐण्टिगोनस को आज्ञा दी—"इस अभागी लड़की को समुद्र पार किसी जङ्गल में छोड़ आओ। पापिष्ठा पत्नी की यह कन्या भी मेरी आँखों में काँटे सी खटकती है"।

ऐण्टिगोनस कैमिलो की भाँति सद्विवेचक और सहृदय नहीं था। राजा की आज्ञा पाते ही, वह निष्ठुर जहाज़ पर चढ़ राजकन्या को समुद्र-पार विजन वन में छोड़ने को चला। राजा लियांटिस का मन विकृत हो गया। पत्नी के व्यभिचारिणी होने की आशङ्का उनके हृदय में दृढ़ होगई!

इसके पहले उन्होंने क्लियोमिनीज़ और डाइमन नामक दो सम्भ्रान्त पुरुषों को एपोलो देव के मन्दिर में रानी के सतीत्व-विषय की परीक्षा लेने भेजा था। राजा ने उन लोगों के लौट आने तक की भी अपेक्षा नहीं की। उन्होंने विधिवत् एक सभा आह्वान की। इस सभा में अनेक विज्ञ, प्राज्ञ, और सम्भ्रान्त व्यक्ति तथा राजकर्मचारी निमन्त्रित हुए। दुष्ट ग्रहों की मारी हुई सूतिका-गृह-वासिनी अभागिनी रानी इस सभा में लाई गई। क्षोभ, दुःख, अपमान, घृणा और लज्जा से उनके हृदय के फट कर सौ टुकड़े होने का उपक्रम हुआ।

चारों ओर इष्टमित्र और अमात्य बैठे यह बाट देख रहे हैं कि, रानी हारमियोन सती है या असती! इसी समय एपोलो देव के मन्दिर से राज-प्रेरित वे ही दो भलेमानस इस सभा में लौट आये और सहर्ष उक्त मन्दिर के दैवज्ञ पुजारी का स्वाक्षरित एक पत्र राजा को उन लोगों ने दिया। राजा ने मन्त्री के हाथ इस प्रत्यादेशलिपि को देकर, सबों के सामने पढ़ने के लिए अनुमति दी। उक्त पत्र में, संक्षेपतः यों लिखा था—"हारमियोन सती साध्वी है; पालिक्सीनीज़ निष्पाप है; कैमिलो धार्मिक प्रजा है; और लियांटिस बड़ा ज़ालिम है; कन्या के उद्धार न होने से राजा निर्वंश हो जायगा"।

किन्तु अभागे राजा का चित्त भयानक प्रतिहिंसा से कलुषित हो रहा था। वे मन ही मन समझे—"रानी के आत्मीय लोगों ने छल-कौशल कर यह पत्र भेजा है, और सच्चा प्रत्यादेश पत्र नष्ट कर डाला है।" दुर्भाग्यशाली लियांटिस ने समागत सभ्यमण्डली से यों कहा—"आप लोग इस पापिष्ठा रानी के प्रति उचित दण्ड की आज्ञा दीजिए।"

सब बातें मुख से निकलने न पाई थीं कि, एक नौकर ने हाँपते हुए आकर निवेदन किया—"महाराज, सत्यानाश होगया! सबों के सामने प्रकाश्य-सभा में जननी के सतीत्व विषय की घृणित बात सुनकर मारे दारुण दुःख और लज्जा के राजकुमार मैमिलस् ने अकस्मात् प्राणत्याग किया!"

इस निदारुण समाचार के सुनते ही अभागिनी हारमियोन मूर्च्छित हो गईं। अभागे राजा का कठोर हृदय अब पिघला। पुत्र की मृत्यु-वार्ता उनके हृदय में विषाक्त बाण की भाँति चुभी। अभागिनी रानी के प्रति भी करुणा का उदय हुआ। पालिना प्रभृति समागत रमणियों को उन्होंने आज्ञा दी—"रानी को यहां से ले जाकर इनकी टहल करो"। पालिना ने वैसा ही किया। परन्तु तुरन्त लौटकर उसने राजा से कहा—"हाय! वही मूर्च्छा रानी की अन्तिम मूर्च्छा थी। उन्होंने अनन्त काल के लिए इस लोक को त्याग दिया!"

अब राजा लियांटिस के हृदय में प्राणान्तक-सन्ताप-ज्वाला प्रज्वलित होने लगी। राजा को विवेक-बुद्धि पुनः उत्पन्न हुई। सरला स्नेहमयी पत्नी के प्रति अपने पैशाचिक निष्ठुर आचरण की बात उन्हें स्मरण हुई। साध्वी सहधर्मिणी के निष्कलङ्क-चरित्र पर उनका तिल भर भी संशय न रहा। उन्होंने सोचा—"मैं ही इन सब अनर्थों का मूल हूं। मेरी ही अपरिणामदर्शिता के कारण आज यह सर्वनाश हुआ! मैं ही स्त्री-पुत्र के विनाश का कारण हुआ। मैंने अपने ही बुद्धि दोष से शिशु-कन्या को खोया!! ओः! इस दुःख का कहीं अन्त है! समझा, एपेलो देव का प्रत्यादेश सच्चा था। कलुषित अन्तःकरण होने के कारण ही मैंने उस अमृतमयी लिपि का आस्वाद नहीं पाया। कन्या के पुनः प्राप्त न होने से निर्वंश हो जाऊँगा। हाय! क्यों न समझा!!!

क्षोभ, दुःख, शोक, आत्मग्लानि और दारुण अनुताप से राजा का हृदय दग्ध होने लगा। राज-पाट त्याग कर उस निर्वासिता कन्या को लौटा मँगाने का उन्होंने सङ्कल्प किया। पुनः उन्होंने सोचा—"ऐण्टिगोनस किस मार्ग से उसे ले गया है; यह तो मैं जानता ही नहीं; और कोई भी नहीं जानता"।

सिसिलिया के राजा को चारों ओर अन्धकार दीखने लगा। सब तरह से निरुपाय होने के कारण मारे शोक के पागल से होकर बड़े कष्ट से वे दिन बिताने लगे।

ऐण्टिगोनस ने राजपुत्री को साथ ले, जिस जहाज़ पर चढ़कर समुद्र की यात्रा की थी, दुर्भाग्यवश, तूफ़ान की चपेट से, वह जहाज़ भटक कर बोहिमिया के राजा पालिक्सीनीज़ के राज्य में जा लगा। निर्दय ऐण्टिगोनस ने जहाज़ से उतर कर तटस्थ जङ्गल के बीच एक पेड़ के तले अभागिनी हारमियोन की उस प्राण-प्यारी कन्या को रख दिया। परन्तु पाप का फल हाथोहाथ फलीभूत हुआ! पापिष्ठ ऐण्टिगोनस कठोर राज-आज्ञा पालन कर ज्यों ही जहाज़ पर चढ़ने के लिए लौटा, त्यों ही एक भयानक रीछ ने सहसा उस पर आक्रमण किया और तुरन्त अपने प्रखर नखों से उसकी अँतड़ियाँ फाड़कर उसे मार डाला।

रानी हारमियोन ने शिशु-कन्या को भाँति भाँति के गहने और बहुमूल्य पोशाक से सुसज्जित कर राजा लियांटिस के समीप प्रेरण किया था। परन्तु दुर्भाग्यवश राज-कन्या को उसी वेशभूषा सहित निर्वासन हुआ। ऐण्टिगोनस जिस समय राजकन्या को वन में छोड़ने के लिए ले गया था, उस समय एक काग़ज़ के टुकड़े पर, छोटे छोटे अक्षरों में "पारदिता" (यह नाम) लिख कर, और उस पर उसके उच्चवंश में जन्म और दारुण दुर्भाग्य की कहानी भी संक्षेप में उल्लेख कर, उसने उस काग़ज़ को कन्या के वस्त्र के साथ आलपीन से लगा दिया था।

असहाय के सहायक भगवान हैं। अभागी हारमियोन की प्राण-प्यारी पारदिता असहाय मरेगी, यह विधाता की इच्छा नहीं थी। जिस समय

कठोर हृदय ऐण्टिगोनस पारदिता को विजन वन में छोड़ कर चला गया, उस समय, अकस्मात्, एक गड़रिया घूमता फिरता उस स्थान पर आ पहुँचा। उसने देखा कि एक शिशु पड़ा हुआ है। देख कर उसे दया आई। सयत्न उस कन्या को गोद में उठा कर वह घर ले गया। गड़रिये ने उस कन्या को अपनी स्त्री के गोद में डाल दिया। गड़रिया की स्त्री कन्या के मनोहर रूप-लावण्य तथा रत्नालङ्कार आदि देख अति सन्तुष्ट हुई और अपनी सन्तान की भाँति उस कन्या का वह लालन पालन करने लगी।

गड़रिया की अवस्था भली नहीं थी। परन्तु पायी हुई कन्या के देह पर जो सब मूल्यवान् रत्नालङ्कार थे, उनके द्वारा; अकस्मात्, रातोरात, "धनवान्" हो जाने पर लोग चर्चा करेंगे, इस आशङ्का से उसने अपने पहले के मकान को छोड़ दिया और देश की दूसरी ओर वह जा बसा। अनन्तर अधिक भेड़ें ख़रीद कर वह व्यापार-धन्धा जमा बैठा और थोड़े ही दिनों में वह एक धनवान् गड़रिया हो गया। अवस्था के बढ़ने और ज्ञानोदय होने पर भी पारदिता ने किसी तरह अपना परिचय नहीं पाया, वरन् उसने अपने को गड़रिया ही की पुत्री समझा।

स्वभाव की क्या आश्चर्य्य महिमा है! यद्यपि पारदिता का गड़रिया ने लालन-पालन किया और उसने उसे शिक्षा और सदुपदेश दिया, तथापि उच्चवंश, मर्यादा तथा माता-पिता के गुण से वह बालिका वञ्चित नहीं रही। राजकुल में जन्म लेने से जो सब महद्गुण प्राप्त होते हैं, पारदिता में उन सब गुणों का अभाव नहीं था।

बोहिमिया के राजा पालिक्सीनीज़ का फ्लोरिज़िल नामक एकलौता पुत्र था। फ्लोरिज़िल एक दिन शिकार करता हुआ अकस्मात् उसी गड़रिया के झोपड़े के सन्निकट आ उपस्थित हुआ और उसने अपूर्व सौन्दर्यशालिनी लज्जावती पारदिता का दर्शन किया। पारदिता ने भी युवराज फ्लोरिज़िल को देखा। परस्पर में चार आँखें हुईं। परस्पर परस्पर के रूप पर आकृष्ट हुए। राजपुत्र उन्मत्त हुआ; उस अनुपमा सुन्दरी को प्राप्त करना ही उसको इष्ट हुआ।

राजपुत्र घर को लौटा। परन्तु घर में चैन कहाँ। जिस तरह से बन पड़े उस रूपवती रमणी को प्राप्त करना ही होगा, यह विचार, सामान्य ग्वाले के भेष में, "डोरिक्लिस" नाम रख, उस गड़रिया के यहाँ वह जाने आने लगा। युवक-युवती कुछही दिनों में परस्पर के प्रणय-सूत्र में बद्ध हुए।

बोहिमिया के राजा, पुत्र को सर्वदा घर पर अनुपस्थित रहते देख कर, संशयित और कौतूहली हुए। युवराज रोज़ अकेला कहाँ जाता है यह जानने के लिए राजा ने गुप्तचर नियुक्त कर दिये। अल्प अनुसन्धान ही से सब रहस्य प्रगट हो गया। दूतों ने राजा को ज्ञापन कर दिया कि, युवराज फ्लोरिज़िल एक गड़रिया की तनया के प्रेम में फँस गया है।

उक्त घटना की सचाई झुठाई की जाँच करने के लिए राजा पालिक्सीनीज़ एक दिन उसी प्राणरक्षक प्रिय कैमिलो को साथ ले उक्त गड़रिया के यहाँ पहुँचे। दोनों ही छद्मवेश में थे।

उस दिन वहाँ "मेष-मुण्डन" (Sheep Shearing) नामक एक मेला था। ग्राम्य-भोज के लिए मेज़ पर भाँति भाँति की खाने की चीज़ें से भरी हुई रकाबियां सजी हुई थीं। झोपड़े के सामने घास पर लड़के लड़कियां को दो तीन मण्डलियां नाच रही थीं। दरवाज़े पर अनेक प्रकार की चीज़ें बिकने के लिए सुसज्जित थीं। बहुतेरे बालक खिलौना आदि ख़रीद रहे थे। ऐसे आनन्द अवसर पर स्वयं राजा पालिक्सीनीज़ और कैमिलो भी वहां उपस्थित हुए।

उक्त पर्व के कारण चारों ओर आनन्द उत्साह छा रहा था। सभी आमोद प्रमोद में मग्न थे। केवल पारदिता और फ्लोरिज़िल निराले एक कोने में बैठे वार्त्तालाप कर रहे थे। [और आगे।

वासुदेव मिश्र।

———

किरण, रेडियम और परमाणु ।

ज्यों ज्यों विज्ञान की उन्नति होती जाती है त्यों त्यों हम लोगों को नई नई और विलक्षण विलक्षण बातें विदित होती जाती हैं। विज्ञानशास्त्र अभी बालपन की दशा में है। जिस प्रकार एक अज्ञान बालक के सांसारिक पदार्थों के विषय में कभी यथार्थ और कभी अयथार्थ कल्पना होती है, उसी प्रकार वैज्ञानिकों को भी कभी कभी सृष्टि की आश्चर्य्यकारिणी रचना और उसके कार्य-कारण आदि के सम्बन्ध में यथार्थ और अयथार्थ कल्पनायें सूझती हैं। परन्तु वैज्ञानिक ज्ञान की उन्नति के साथ साथ अयथार्थ कल्पनाओं का संशोधन होता जाता है।

२। सत्रहवें शतक के वैज्ञानिक सूर्य की किरणों का इस लोक तक आना प्रेषणात्मक कल्पना (Emission Theory) द्वारा मानते थे। वे समझते थे कि जैसे तोप का गोला उसके मुँह से निकल कर किसी क़िले की दीवार पर टकराकर उसे धक्का देता है, वैसे ही सूर्य्य की किरणें सूर्य्य से निकल कर हमारे नेत्र के रेटीना (Retina) नामक पर्दे पर पड़ती हैं और उसे अपना बोध कराती हैं। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के विद्वान् इस कल्पना को ठीक नहीं मानते; वे इस पर विश्वास नहीं करते। वे कहते हैं कि सूर्य्य की किरणें धारावाही कल्पना (Undulating Theory) द्वारा हम लोगों तक पहुंचती हैं।

३। इस समय के वैज्ञानिकों का मत है कि संसार में जितने पदार्थ हैं—दृढ़, द्रव किम्वा वायु रूप—सबमें ईथर (Ether) नामक एक अत्यन्त पतला पदार्थ फैला हुआ है। उसकी धारा जल और वायु की धारा के समान सतत प्रवाहित रहती है। पदार्थों के प्रकाशित होने का कारण यह है कि जब उन पदार्थों के कण गरमी या और किसी शक्ति की प्रेरणा से वेगगामी होकर घूमने लगते हैं, तब वे अपने पास के ईथर नामक वस्तु को धक्का देते हैं; अतएव उनमें एक प्रकार की धारा उत्पन्न हो जाती है। वह धारा जल की धारा के समान बढ़ते बढ़ते हमारे नेत्रों के पर्दे पर धक्का देती है। यही कारण है जो हमको उन किरणों का बोध होता है। इस धारावाही कल्पना से प्रकाश के गुण समझने में बाधा नहीं आती। परन्तु प्रेषणात्मक कल्पना को स्वीकार करने से अनेक आपत्तियां आती हैं; इसीलिए वह कल्पना अब त्याज्य समझी जाती है।

४। (क) इस लेख में विज्ञान के कई पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया जायगा। इसलिए उनका अर्थ जानने के लिए पहले हम उनका स्पष्टीकरण करना चाहते हैं।

(ख) पदार्थों के वे सूक्ष्म और दृश्य भाग जो प्राकृतिक रीति से स्वयं हो जाते हैं, या जो किसी अप्राकृतिक रीति से किये जाते हैं, उनका नाम कण है।

(ग) द्रव्यों के रासायनिक गुणों से बोध होता है कि जिन टुकड़ों या कणों से वे बने हैं वे एक दूसरे से परस्पर सटे हुए अर्थात् संलग्न नहीं हैं; किन्तु अनन्त परमाणुओं, अर्थात् सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणों, के समुदाय से बने हैं। जब तक किसी कृत्रिम या स्वाभाविक रीति से द्रव्यों का नाश न किया जाय तब तक वे परमाणु अलग अलग नहीं हो सकते और देखे भी नहीं जा सकते। ये परमाणु, द्रव्यों में, एक दूसरे को स्पर्श किये बिना, इधर उधर, पड़े रहते हैं; और अपने आश्रयीभूत द्रव्यों की गुरुत्वशक्ति के अनुसार उनके बीच में थोड़ा या बहुत अन्तर रहता है।

(घ) दो या अधिक परमाणुओं के रासायनिक संयोग से मिले हुए द्रव्यों का एक अणु बनता है। द्रव्यों का दूसरा नाम तत्व है। असंयुक्त तत्वों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म टुकड़े का नाम परमाणु है और संयुक्त, अर्थात् मिश्रित, द्रव्यों के वैसे ही टुकड़े का नाम अणु है। अणु, कण से छोटा होता है और परमाणु अणु से। यदि ३,०००,०००,००० परमाणु एक

सीधी रेखा में रक्खे जायँ तो उनकी लम्बाई सिर्फ़ एक इञ्च होगी! हिसाब लगाने से मालूम हुआ है कि यदि १००,०००,०००, ००,०००,०००,०००,००० परमाणु एकत्र किये जायँ तो वे बालू के एक कण के बराबर हों!!!

(च वैद्युतिक-अणु परमाणुओं से भी छोटे होते हैं। ये अणु परमाणुओं हीं में फैले रहते हैं। एक परमाणु का जितना व्यास होता है उतने में १००,००० वैद्युतिक-अणु रक्खे जा सकते हैं। और, १००,०००,०००,०००,०००,००० वैद्युतिक-अणु इकट्ठा रखने से उनका आकार एक परमाणु के आकार के बराबर होता है!!! रासायनिक परमाणुओं के सामने ये वैद्युतिक-अणु उतने ही छोटे हैं जितना किसी ऊंचे राजमहल के सामने बालू का एक कण!

५। ईथर बहुत ही सूक्ष्म और अदृश्य पदार्थ है। इस विलक्षण विश्व में वह सर्वत्र फैला हुआ है। उसके अत्यन्त लचीले और अगाध समुद्र के भीतर हम लोग वैसे ही रहते हैं जैसे मछलियां पानी में रहती हैं। ईथर हवा में भी रहता है। हवा के दो कणों के बीच में वह सर्वदा विद्यमान रहता है। हवा पृथ्वी से केवल २०० मील ऊपर तक ही मानी गई है; परन्तु, ईथर सूर्य्यमण्डल तक है। इस ब्रह्माण्ड का कोई अंश ऐसा नहीं जहां पर वह व्यापक न हो। सोना, चाँदी इत्यादि जितने धातु हैं, सबके रासायनिक परमाणुओं के बीच में ईथर विद्यमान है। जिस प्रकार पृथ्वी ईथर के बीच से होती हुई सूर्य्य की परिक्रमा करती है, उसी प्रकार पदार्थों के परमाणु, ईथर के समुद्र में, एक दूसरे की द्रुतगति से परिक्रमा करते हैं। प्रत्येक द्रव्य के अविभाज्य परमाणु एक एक गोले हैं। अपने अपने पदार्थ में वे उसी तरह स्थित हैं जैसे इस ब्रह्माण्ड में सूर्य्य और तारागण इत्यादि। जिस प्रकार ग्रह, उपग्रह और तारागण मिल कर आकर्षण-शक्ति-द्वारा इस बृहदाकाशमण्डल के पिण्ड-समुदाय को बनाये हुए हैं, उसी प्रकार द्रव्यों के परमाणु, ईथर द्वारा, एक दूसरे को आकर्षित किये हुए, अणुओं को बनाये रखते हैं, अणु कणों को, और कण पिण्ड को।

६। ईथर का गुरुत्व बहुत ही कम है। वह पानी का $\frac{१}{१,०००,०००,०००,०००,०००,०००}$ अंश माना गया है! यदि वायु-मण्डल ३० मील उंचाई तक कल्पना किया जाय तो उसका दबाव एक गज़ लम्बे और एक ही गज़ चौड़े पृथ्वीतल पर २५४ मन होगा। परन्तु उतनेही तल पर, और उतनीही उंचाई का, ईथर का दबाव केवल $\frac{१}{२५,०००,०००}$ छटांक होगा!! यदि पृथ्वी के बराबर ईथर का एक पिण्ड तोला जाय तो उसका बोझ होगा सिर्फ़ ३५ मन!!!

७। आज से दस वर्ष पहले सूर्य्य की किरणों को छोड़ कर हम लोगों को और कोई किरणें विदित न थीं। हाँ, क्लार्क मैक्सवेल (Clerk Maxwell) ने यह सिद्ध किया था, कि प्रकाश एक प्रकार के वैद्युतिक चुम्बक की घटना है, जो ईथर में वैद्युतिक-अणुओं के बड़े वेग से दौड़ने से उत्पन्न होता है। परन्तु यह सिद्धान्त बहुत कठिन था; क्योंकि यह विज्ञान और गणित की दुरूह बातों से भरा हुआ था। इसलिए लोग विद्युत् को द्रवपदार्थ ही मानते थे। हर्ज (Hertz) साहब ने इस सिद्धान्त के सबूत को कुछ सरल कर दिया। पीछे से रोञ्जेन (Rontgen) साहब ने इस विषय को और भी बोधगम्य कर दिया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि, पूरे तौर से, किम्वा प्रायः पूरे तौर से, शून्य स्थानों में दोनों प्रकार की (Positive और Negative) वैद्युतिक धाराओं के संयोग से एक प्रकार की किरणें उत्पन्न होती हैं और उनका प्रभाव धातु, मांस और दूसरे पदार्थों पर पड़ता है, जो अब तक प्रकाश-प्रभाव-हीन (Apague) समझे जाते थे। अन्त में डाक्टर गस्टावे-ली-बान (Gustave le Bon) ने 'काली-किरण' (Black Rays) नामक अत्युपकारी सिद्धान्त का पता लगाया। जैसे खौलते हुए पानी से एक प्रकार की किरणें (आँच) निकल कर हमको

अपनी गरमी का बोध कराती हैं, परन्तु स्वयं वे देख नहीं पड़तीं, वैसे ही संसार के सारे पदार्थ अदृश्य किरणें उत्क्षेपण करते हैं। ऐसी उत्क्षिप्त किरणों का असर उन द्रव्यों पर पड़ता है जो आज तक दृढ़ और प्रकाश को ग्रहण करने की शक्ति से रहित माने गये थे। इसके कुछ दिन पीछे बेकरल (M. Becqueral) साहब ने यह सिद्ध करके दिखला दिया कि ये काली किरणें, यूरेनियम नामक धातु से निकला करती हैं। यह धातु और धातुओं को अपेक्षा अधिक क़ीमती होती है। अब करी (Curi) साहब और उनकी मेम ने यूरेनियम की भी अपेक्षा अधिक मूल्यवान् रेडियम धातु का पता लगाया है। इस धातु से जो काली किरणें निकलती हैं वे अत्यन्त ही प्रभावशालिनी होती हैं। जब से रेडियम का पता लगा है तब से तो विज्ञान-शास्त्र में एक नये ही युग का आरम्भ हो गया है। नित्य नई नई कल्पनायें निकलने लगी हैं।

८। ईथर में परमाणुओं के द्रुतगमन का नाम किरण है। जैसे किसी जंज़ोर के एक छोर में धक्का देने से उसकी प्रत्येक कड़ो में धक्का लगता है और वह धक्का कड़ियों से होता हुआ दूसरे छोर पर जा पहुंचता है; अथवा, जैसे समुद्र की लहरें एक किनारे से उठकर दूसरे किनारे पर जा टकराती हैं; वैसे ही पदार्थों के परमाणु एक दूसरे को धक्का देते हुए ईथर में घूमते और लहराते हैं, और दृश्य किम्वा अदृश्य किरणें उत्पन्न करते हैं। लहरों की लम्बाई $\frac{१}{१०,०००,०००}$ इञ्च से लेकर १००० फ़ीट तक होती है।

९। ऊपर कई प्रकार की किरणों का वर्णन करके अब हम महान् आश्चर्यमय रेडियम धातु की उत्पत्ति के विषय में कुछ लिखते हैं। किरणों का वर्णन हमने पहले इसलिए किया, कि किरणों ही ने इस द्रव्य के अनुसन्धान का मार्ग दिखलाया है। इसकी उत्पत्ति के विषय में करी साहब की मेम ने जो कुछ कहा है उसे हम संक्षेप से यहां लिखते हैं—

१०। "१८९७ ईसवी के अन्त से मैंने यूरेनियम-मिश्रित द्रव्यों की परीक्षा आरम्भ की। इन पदार्थों से रोञ्जेनीय किरणें स्वयमेव निकला करती थीं। इसलिए मैं यह जानने को उत्सुक हुई कि किस गुण-विशेष से ये किरणें निकलती हैं। आश्चर्य्य की बात यह थी कि इस किरण-विकिरण से यूरेनियम का कोई अंश नष्ट न होता था। क्या यूरेनियम ही एक ऐसा पदार्थ है जिससे ये किरणें निकलती हैं या और भी कोई ऐसा पदार्थ है? ऐसे प्रश्न मेरे चित्त में उठने लगे और उनके समाधान के यत्न में मैं लगी।

११। "यूरेनियम से मिले हुए पदार्थों से निकलनेवाली किरणों को पहले मैंने देखना आरम्भ किया। परीक्षा से मुझे विदित हुआ कि यूरेनियम की किरणों की शक्ति स्थिर-स्थायी नहीं है; गरमी सरदी के कारण उसमें न्यूनाधिकता हुआ करती है। मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि जिस पदार्थ में यूरेनियम का अंश जितना ही अधिक होता है उससे उतना ही अधिक प्रभावशालिनी किरणें निकलती हैं। अब मुझे विश्वास हो गया कि इन किरणों की उत्पत्ति इस धातु के किसी गुण-विशेष से है। अर्थात् यह इसका परमाणु-जनित गुण है; इस पदार्थ के किसी रासायनिक संयोग से ये किरणें नहीं निकलतीं।

१२। "तब मैं यूरेनियम के सिवा और पदार्थों की भी परीक्षा करने लगी। मैंने यह जानना चाहा कि यूरेनियम को छोड़कर संसार में क्या और भी कोई पदार्थ हैं जिनसे, बिना किसी रासायनिक संयोग के, ऐसी किरणें निकल सकती हैं? अतएव मैंने अनेक मिश्रित पदार्थों की परीक्षा की। उनमें से थोरियम (Thorium) नामी धातु से मिले हुए पदार्थों में तो थोड़ा सा किरणोत्पादक गुण मिला। और किसी में ऐसा गुण मुझे न मिला।

१३। "इसके अनन्तर मैं खनिज द्रव्यों की परीक्षा में उद्युक्त हुई। मुझे विश्वास था कि जिन पदार्थों में यूरेनियम या थोरियम के अंश होंगे, उनमें थोड़ी किरणोत्पादक शक्ति अवश्य होगी। परन्तु परीक्षा करने पर मुझे अत्यन्त आश्चर्य्य हुआ। इन खनिज पदार्थों में, आक्सिजन इत्यादि से मिले हुए यूरेनियम और थोरियम-धातु-मिश्रित द्रव्यों की अपेक्षा, चैागुनी प्रभावशालिनी किरणोत्पादिका शक्ति मुझे मिली। इसपर मुझे तत्काल यह सन्देह हुआ कि, हो न हो इन खनिज द्रव्यों में कोई दूसरा ऐसा अज्ञात तत्व है जिसमें यूरेनियम की अपेक्षा अधिक किरणोत्पादक शक्ति है। मैंने यह भी शङ्का की कि इन खनिज द्रव्यों में उस अज्ञात तत्व का अंश बहुत कम है। इसलिए वह रासायनिकों की दृष्टि से अद्यावधि अदृश्य है। अतएव अब मैं इस नये तत्व को ढूँढ़ने में लगी।

१४। "पिच ब्लेंडी (Pitch Blande) नामक खनिज द्रव्य की मैंने रासायनिक परीक्षा आरम्भ की। उसके मैंने ऐसे विभाग करडाले जिनमें एक की अपेक्षा दूसरे में विशेष किरणोत्पादक शक्ति थी। किन्तु मैं उस नूतन पदार्थ को अलग न कर सकी जिसमें यह शक्ति वर्तमान थी। उसको अलग करने और उसका नाम जानने की मुझे अत्यधिक उत्कण्ठा हुई। पिच ब्लेंडी के सब तत्वों को मैंने अलग कर डालना चाहा। इसमें मैंने अपने पति की भी सहायता ली। हम लोगों ने समझा था कि यह काम बहुत शीघ्र हो जायगा। परन्तु, इसमें इतना द्रव्य और इतना समय लगा जिसका हम लोगों को कभी स्वप्न में भी ख़याल न था।

१५। "हम लोगों को यह शीघ्र ही विदित हो गया कि पिच ब्लेंडी में कुछ ऐसे पदार्थ हैं जिनसे राञ्जेनीय किरणें निकला करती हैं। ऐसी पहली वस्तु जो हमको मिली वह बिस्मथ (Bismuth) नामक तत्व के साथ थी। उसका नाम हमने पोलोनियम (Polonium) रक्खा। जो बेरियम (Barium) नामक तत्व के साथ हमको मिला उसे हमने रेडियम (Radium) कहा। जो बची हुई मिट्टी में रह गया उसका नाम हमने ऐक्टिनेलियम (Actinalium) रक्खा। रेडियम की ओर हमारा चित्त पहले ही से आकर्षित हुआ था। रसायन शास्त्र के जिन विद्वानों को हम लोगों ने इसके गुण बतलाये सबने कहा कि यह गुण किसी नवीन तत्व का है। इसलिए हम लोग इस नवीन तत्व—रेडियम—के जन्म दाता कहलाये।

१६। "अब बिस्मथ से पोलोनियम को, और बेरियम से रेडियम को अलग करना शेष रह गया। परन्तु यह काम इतना कठिन निकला कि इसे पूरा करने में हम लोगों को सात वर्ष लग गये! और तब भी हम केवल रेडियम ही को अलग कर पाये। थोड़ी परीक्षा से हमको ज्ञात होगया कि बेरियम से मिला हुआ रेडियम यदि पानी में गलाया जाय तो इसका कुछ भाग मिश्री की तरह जम जाता है और उसके डले हो जाते हैं। और जो कुछ बचता है वह पानी में ही रह जाता है। इन जमे हुए डलों में किरणोत्पादक शक्ति बहुत ही अधिक देखी गई है। इससे हम लोगों को विश्वास होगया कि इन डलों में रेडियम का अंश अधिक होगा। तब हम लोगों ने डेढ़ मन पिच ब्लेंडी को बार बार गलाना और बार बार उसके डले बनाना आरम्भ किया। हम समझते थे कि हमको शीघ्र ही शुद्ध रेडियम प्राप्त हो जायगी। परन्तु यह हमारी भारी भूल थी। एक रत्ती भर डला रह जाने पर भी बेरियम ने उसका पिण्ड न छोड़ा! पर इस एक रत्ती के टुकड़े में पहले से लाखों गुना अधिक किरणोत्पादक शक्ति आगई थी। इस समय, हम लोग बहुत हताश हो गये थे; पर, तिसपर भी, हमने अपना उद्योग नहीं छोड़ा। बराबर उसमें लगे ही रहे।

१७। "इस समय, इस ओर, लोगों का चित्त विशेष आकर्षित हुआ। हमको सहायता भी मिलने लगी। फ्रांस को गवर्नमेण्ट ने द्रव्य की सहायता की। आस्ट्रिया की गवर्नमेण्ट ने पिच

ब्लेंडी देकर सहायता की ; और पेरिस की रासायनिक सभा ने परीक्षा के लिए बड़े बड़े पात्रों और यन्त्रों से सहायता की। तब, यूरेनियम से अलग करके २०० मन पिच ब्लेंडी हमने ली और उसका परिशोधन आरम्भ किया। अन्त में हमको कामयाबी हुई। हमारा प्रचण्ड परिश्रम फलीभूत हुआ। हमने जाना कि ७८४,००० मन पिच ब्लेंडी में एक मन रेडियम का अंश रहता है!"

१८। केरी साहब की मेम के कथन का यह सारांश है। अब यह देखना है कि रेडियम है क्या चीज़? यह एक धातुरूप तत्व है और बहुत ही कम मिलता है। यह क्लोरिन और बेरियम धातुओं से मिला हुआ पाया जाता है। इसका रङ्ग सफ़ेदी लिए हुए भूरा होता है। यह अँधेरे में जुगुनू के समान चमकता है और रोञ्जेन नामक किरणों का उत्पादक है। परीक्षा करने से मालूम हुआ है कि इसकी किरणें यूरेनियम की किरणों की अपेक्षा १,०००,००० गुना अधिक प्रभावशालिनी होती हैं। विद्युत्पूर्ण यलेक्ट्रास्कोप (Electroscope) नामक यन्त्र की शक्ति को यह कई गज़ की दूरी से नष्ट कर देता है। उस यन्त्र पर चाहै एक इञ्च मोटी सीसे की क़लई हो, उसके नष्ट होने में देर नहीं लगती। जिन प्लेटों पर फोटो लिया जाता है उनपर, परदा रहते भी, इस धातु का प्रभाव पड़ता है; परन्तु कुछ देर बाद; तत्काल नहीं। इसलिए, इस तत्व के प्रकाश में चित्र लिये जा सकते हैं।

१९। भाप मिली हुई वायु में इस तत्व का प्रकाश बहुत शीघ्र कम हो जाता है। यदि बन्द की हुई किसी स्वच्छ नली में रेडियम रक्खा जाय तो उसपर एक प्रकार का रङ्ग चढ़ जाता है और क्रम क्रम से प्रकाश का निकलना कम हो जाता है। किन्तु बिलकुल ही बन्द नहीं होता। रेडियम बहुत परिश्रम और बहुत व्यय से भी बहुत ही कम प्राप्त होता है। इसीसे इसका मूल्य सोने से सैकड़ों गुना अधिक है। इसकी किरणों में सूर्य्य की किरणों की ऐसी गरमी होती है। इसका एक कण पास रक्खे हुए बर्फ़ के एक टुकड़े को शीघ्र गला सकता है। इस तत्व की किरणों में यदि उष्णतामापक यन्त्र (Thermometer) रक्खा जाय तो इसकी गरमी से उसमें का पारा ३° अंश और चढ़ जायगा। एक माशा रेडियम से इतनी शक्ति उत्पन्न हो सकती है कि उससे १४,००० मन बोझ १ मील की उँचाई तक ऊपर को उठ जाय!!! यदि सात सेर रेडियम पाई जाय और उससे उत्पन्न हुई सब शक्ति काम में लाई जाय तो एक घोड़े की शक्तिवाला यञ्जिन बिना पानी, बिना कोयला और बिना आग के ५०,००० वर्ष से भी अधिक बराबर चलता रहे!!! रेडियम के एक परमाणु के शतांश से उत्पन्न हुई किरणों की गति प्रति सेकण्ड १००,००० मील होती है!!! ईथर और रेडियम की किरणों ही की सहायता से मारकोनी साहब अपने बेतार की तार-बरक़ी को चलाते हैं। हम लोगों के शरीर से भी एक प्रकार की अदृश्य किरणें निकला करती हैं। उनको और यक्स-रेज़ (X-Rays) नामक किरणों की सहायता से शरीर के भीतरी भागों का फोटो लेने की तरकीब निकाली गई है। परन्तु उसमें अभी तक पूरी पूरी सफलता नहीं हुई। यह विश्वास किया जाता है कि रेडियम की किरणों को शरीरोत्पन्न किरणों से मिश्रित करके शरीर के जिस भाग का चित्र लिया जायगा वह बहुत ही अच्छा निकलैगा। यदि यह बात सिद्ध हो गई, और शरीर के अन्तर्भागों का चित्र उतर आने लगा, तो डाक्टरी विद्या में बहुत बड़ी उन्नति होने की सम्भावना है।

२०। सृष्टि में ऐसे अनेक पदार्थ हैं जिनमें इस प्रकार की किरणों को उत्पन्न करने की शक्ति विद्यमान है। परन्तु उन द्रव्यों की किरणों की शक्ति यथापूर्व समभाव से स्थिर नहीं रहती; न्यूनाधिक हुआ करती है। रेडियम की बात ऐसी नहीं है। रेडियम की किरणोत्पादिका शक्ति यदि

किसी प्रकार कम हो जाती है, या बिलकुल ही उड़ा दी जाती है, तो कुछ काल में वह फिर जैसी की तैसी हो जाती है। बिना किसी द्रव्य के सहारे और बिना किसी रासायनिक संयोग के रेडियम में गरमी और विद्युच्छक्ति उत्पन्न हुआ करती है। इन्हीं विलक्षणताओं के कारण सर्व-साधारण, विशेष करके विज्ञानिकों, का चित्त इसकी ओर बहुत ही अधिक आकर्षित हुआ है।

२१। किरणों के निकल जाने पर जो भाग शेष रह जाता है उसे छांछ (Emanation) कहते हैं। यह छांछ रेडियम से भी अधिक शक्तिमान होती है। परन्तु वह अनस्थिर है। फूंक कर वह धुवाँ के समान अलग कर दी जा सकती है। किरणों के निकल जाने पर रेडियम का बहुत ही कम भाग शेष रह जाता है; परन्तु उस बचे हुए अंश की परीक्षा करने का जो फल हुआ है वह अत्यन्त ही आश्चर्य्यकारक है। थोड़ी ही देर में यह छांछ एक दूसरा ही द्रव्य हो जाता है और उसमें किरण-विकिरक शक्ति ज़रा भी नहीं रह जाती। इससे सिद्ध होता है कि यह घटना परमाणुओं के पृथक्करण से होती है। रासायनिक संयोगों से ऐसे पृथक्करण होते हैं; परन्तु जब ऐसे संयोग ही नहीं हुए तब वे पृथक्करण के कारण भी नहीं माने जा सकते। परमाणुओं के पृथक्त्व का गुण किसी किसी द्रव्य में कम और किसी किसी में अधिक रहता है। इसपर गरमी-सरदी का प्रभाव नहीं पड़ता। इस परीक्षा के फल से सिद्ध होता है कि जिन परमाणुओं को आज तक वैज्ञानिक अविभाज्य और विभागहीन समझते थे उनका विभाग हो सकता है; वे पृथक् पृथक् किये जा सकते हैं। इस पृथक्करण में वे स्वयं अपनी अपनी शक्ति उत्पादन करते हैं। इस फल से नये नये तत्वों का बनना और नष्ट हो जाना सिद्ध होता है। अतएव यह सिद्धान्त अशुद्ध होगया कि परमाणुओं का नाश नहीं होता और वे पृथक् नहीं हो सकते।

२२। बिना किसी बाहरी शक्ति का प्रयोग किये परमाणुओं के अलग होने से एक नवीन शक्ति के उपार्जन करने का भण्डार प्राप्त हो गया है। यदि एक छटाँक भी परमाणुओं का समुदाय मिल सके तो उससे अपरम्पार शक्ति प्राप्त हो सकती है। इस शक्ति को हम लोग आवश्यकता के अनुसार काम में ला सकते हैं। किन्तु अभी तक बहुत कम परमाणु अस्थिर, अर्थात् विभाज्य दशा में, पाये गये हैं। विशेष करके ऐसे ही परमाणु देखे जाते हैं जो अविभाज्य जान पड़ते हैं। परन्तु रेडियम के पर-माणुओं की परीक्षा से सिद्ध होता है कि वे कोई भी अविभाज्य नहीं हैं; स्वाभाविक अथवा कृत्रिम रीति से सबका विभाग किया जा सकता है; और वे सब वैद्युतिक अणुओं के रूप में परिवर्तित किये जा सकते हैं। ये वैद्युतिक अणु, परस्पर के मेल से, नये नये तत्वों के परमाणु बन सकते हैं; और, काल पाकर, पहले के परमाणु नष्ट हो जा सकते हैं। इन परमाणुओं का हिसाब लगाकर हम लोग सूर्य्य का शेष जीवनकाल बतला सकते हैं। इस बात की भी गणना की जा सकती है कि वर्तमान दशा में प्राप्त हुए पृथ्वी को कितना काल हुआ; और कितने काल से यह जीवों के रहने योग्य हुई।

२३। इस तत्व के ज्ञात होने से सबसे विल-क्षण बात यह मालूम हुई कि संसार के सारे पदार्थ अस्थिर और परिवर्तनशील हैं। कोई वस्तु अमर नहीं है। यह कहना भी ठीक नहीं जान पड़ता कि सृष्टि को हुए अनन्तकाल हुआ; क्योंकि सृष्टि नित्य नित्य नई होती जाती है। जीवों के पीछे तो उत्पन्न होना, बढ़ना और मरना प्रत्यक्ष ही लगा है। मनुष्यों का मार्च (March-कूच) भविष्य की ओर ज़रूर है। परन्तु यह कोई नहीं जानता कि उसे कहाँ जाना है और उसका क्या होनेवाला है? हाँ, इस बात का अवश्य निश्चय है कि मनुष्य वर्तमान स्थिति में नहीं रहने पावैगा। जन्म, उन्नति और नाश संसार का प्राकृतिक नियम है। रेडियम तत्व के ज्ञात होने से पहले लोग यह

समझते थे कि परमाणु इस नियम से बहिर्भूत है; अर्थात् जन्मोन्नतिनाशहीन है। विद्वानों को विश्वास था कि द्रव्यविशेष में, विशेष विशेष प्रकार के परमाणुओं का विशेष रूप से संयोग होने पर, उनके रूप में विभिन्नता आ जाती है; परन्तु स्वयं परमाणुओं में कोई विभिन्नता नहीं आती। अर्थात् न तो परमाणु उत्पन्न होते और न उत्पन्न हुए परमाणु नाश होते हैं। जैसे और जितने परमाणु सृष्टि के आदि में थे वैसे ही और उतने ही अब भी हैं। परन्तु रेडियम के ज्ञात होने पर जड़ और जङ्गम जीवों की विभिन्नता के नियम का परमाणुओं में भी पाया जाना सूचित हुआ। जगत की कोई वस्तु अमर नहीं है; स्वयं यह जगत ही अमर नहीं; जो कुछ है सब नश्यमान और परिवर्तनशील है।

२४। विद्युत् की शक्ति दो प्रकार की है—संग्राहक (Positive) और अभिसारक (Negative)। दोनों प्रकार शक्तियां एक दूसरे को आकर्षित करके एक प्रकार का प्रकाश उत्पन्न करती हैं। इन्हीं दोनों प्रकार की शक्ति-संयुक्त बिजली के टकराने से बादलों में गरज और चमक होती है। ऊपर कहा जा चुका है कि जितने परमाणु हैं सब वैद्युतिक अणुओं में विभक्त हो सकते हैं। अतएव सम्भव है कि ऐसा भी कोई समय आवै जब संसार के सारे परमाणु वैद्युतिक अणुओं में परिणत हो जावें, और वे सब, परस्पर में आकर्षित होकर, अनन्त वैद्युतिक प्रभाओं से भी अधिक प्रभावान् परम ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म में लीन हो जावें। जीतनसिंह।

ईश्वर।

—नास्तिकास्तिक-सम्वाद—

[पूर्व प्रकाशित से आगे]

[३]

नास्तिक—आप, और आपके साथी, ईश्वर की न्यायशीलता का डङ्का बजाया करते हैं। परन्तु इस विस्तारवान् विश्व की तवारीख़ में उसके न्यायी होने के प्रमाण हमें तो नज़र नहीं आते। अगर वह सचमुच ही न्यायी है तो साबित कीजिए।

आस्तिक—यह आपकी कोताह-बुद्धि, या कोताह-दृष्टि, या विवेकभ्रंशता का नतीजा है। मान लीजिए कि परमेश्वर की न्यायशीलता आपकी नज़र में नहीं आती तो क्या आप इससे यह समझेंगे कि वह हैही नहीं—उसका सर्वथा अभाव है? उसे देख सकने में आपकी अशक्तता क्या यह साबित करती है कि संसार में उसका अस्तित्व ही नहीं है? आप ईश्वर के अपार और सीमाहीन न्याय को तौलने के लिए अपनी परिमित यानी महदूद, नज़र से जब तराज़ू का काम लेते हैं, तब सबसे अधिक समर्थवान् ईश्वर के निःसीम गुणों को, ज़बरदस्ती छीन लेने के इरादे से आप कमर कसते हैं; अपनी समझ के सामने उसकी अलौकिक प्रभुता और पण्डिताई को हेच समझते हैं; यहां तक, कि उसके पद तक को, उसके स्थान तक को, छीन लेना चाहते हैं! इस प्रकार के अद्भुत तार्किक पागलख़ानों में मज़बूती से बन्द किये जाते हैं, और अनेक कौतूहल-प्रिय मनुष्य उनको रोज़ देखने जाया करते हैं। ईश्वर के रूप और गुणों की सीमा नहीं; ईश्वर-सम्बन्धिनी जितनी बातें हैं किसीकी हद नहीं; वे सब स्वभाव ही से बे-सीमा की हैं। अतएव, जब उसकी सभी बातों में निःसीमता है तब उसकी न्यायशीलता में भी ज़रूर निःसीमता होनी चाहिए। ईश्वर को अन्यायी कहना, या उसके न्याय की सीमा मुक़र्रर करना, गोया उसके अस्तित्व ही को न मानना है। परन्तु आपकी उक्ति के लफ़्ज़ ऐसे हैं जिनसे यह ज़ाहिर होता है कि आप ईश्वर के अस्तित्व को क़बूल करते हैं। इसलिए उसके अलौकिक और अतुलनीय न्याय को भी क़बूल करना चाहिए। अतएव, यदि वह न्याय, जो आपकी तर्कना-प्रणाली से भी सिद्ध है, आपको नहीं देख पड़ता, तो आपको उसके होने में सन्देह

न करना चाहिए; सन्देह करना चाहिए आपको अपनी आँख के सामर्थ्य पर। परन्तु आपके समान, बे समझे बूझे, बड़ी बड़ी बातें कह डालनेवालों की अक़ल ठिकाने लाना बहुत मुशकिल है।

नास्तिक—जब संसार के महाक्लेशकारक रोग और मृत्यु का; ईर्षा, मोह और निर्दयता का; करुणाजनक दुःख और दरिद्रता का स्मरण आता है, तब आपके अनुसार, इस जड़-जङ्गम जगत् का नक़शा तैयार करनेवाले आपके "पराकाष्ठा के ज्ञानी" को नक़शानवीसी लोगों की नज़र में बहुत ही भद्दी जँचने लगती है। अशक्त और निर्बल जीवों के कम्पमान मांस के टुकड़ों का सशक्त और बलवान जीवों के दाँत, नाख़ून और पञ्जों से फाड़ा जाना भी क्या किसी की निःसीम उदारता, अक़लमन्दी और इन्साफ़ का नतीजा है?

आस्तिक—"लोगों की नज़र में बहुत ही भद्दी जँचने लगती है"! किन लोगों की नज़र में? क्या "लोगों" से आपका मतलब सिर्फ़ आपही से है? यदि नहीं तो आप अपने "लोगों" की परिभाषा बतलाइए और यथानियम की हुई उनकी जाँच और उसकी यथार्थता के प्रमाण दीजिए। हम नहीं जानते आप कब ठीक तर्क करना सीखेंगे। क्या ऐसे ही शुष्क, नियमहीन और अण्ड बण्ड उक्तियों से आप ईश्वर के अलौकिक ईश्वरत्व में दोष साबित करना चाहते हैं? इसी तरह के आपके एक और निरर्गल प्रलाप का हम युक्तिपूर्ण उत्तर दे आये हैं। यह उक्ति भी आपकी वैसी ही है। अतएव हम इसका सविस्तर उत्तर देकर अपना वक्त बे-फ़ायदा नहीं ज़ाया करना चाहते। आपकी बात चीत से यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि न तो आप ईश्वर-सम्बन्धी कुछ भी ज्ञान रखते हैं और न उसके विश्वरूपी नक़शे ही को कुछ समझते हैं। फिर भी आपकी धृष्टता यहां तक बढ़ी चढ़ी है कि संसार के दुःख, क्लेश, मृत्यु, निर्दयत्व और दरिद्र आदि आप ईश्वर के उत्पन्न किये हुए बतलाते हैं! जिस चीज़ को आप जानते ही नहीं; जिसे आप ज़रा भी नहीं समझते; उसमें दोष दिखलाना आपही से प्रकाण्ड तर्क-पण्डित को शोभा देता है। धन्योऽसि!

नास्तिक—शान्ति के साथ, जो कुछ कहना हो, कहिए। आपके कहने का तरीक़ा बहुत ही बुरा है। सुनिये। ईश्वर को बहुत बड़ा मुन्सिफ़ माननेवाले आपके अनेक साथी भी इस मुशकिल को नहीं हल कर सकते कि अगर ईश्वर न्यायी है तो सांसारिक जीवों को इतना क्लेश क्यों मिलता है। इसीलिए वे परलोक की कल्पना करते हैं और कहते हैं कि वहां वह (ईश्वर) इस लोक-सम्बन्धिनी ग़लतियों को दुरुस्त करेगा। अर्थात् जिसने इस लोक में किसी पर ज़ियादती की होगी, या और कोई अपराध किया होगा, उसे उस लोक में वह सज़ा देगा। कहिए; इसमें आपको क्या कहना है?

आस्तिक—तो अशान्ति से आप बहुत घबराते हैं! पर आपने कभी इस बात का भी ख़याल किया है कि यदि, जैसा आप समझते हैं, ईश्वर न होता तो इस पृथ्वी पर कितनी अशान्ति पैदा हो जाती? हमारी आपसे प्रार्थना है कि जीवों के सुख दुःख, न्याय अन्याय, दयालुता और निर्दयता के सम्बन्ध के बिना भी परलोक यथावत् विद्यमान रहता है। वह पहले भी था, अब भी है, और आगे भी रहेगा—सुख दुःखादि के कारण उसका अस्तित्व नहीं है। आपका यह इलज़ाम, कि ईश्वर के माननेवालों ने, ईश्वर की न्यायशीलता को सिद्ध करने के लिए, परलोक की कल्पना कर ली है, इस बात को सूचित करता है, कि या तो आप स्वदेश और परदेश के प्रतिष्ठित तत्ववेत्ताओं के विचारों से बिलकुल ही नावाक़िफ़ हैं; या आप जान बूझ कर ग़लत बयान कर रहे हैं। ये दोनों बातें आपके लिए निहायत ही लज्जाजनक हैं। इन दोनों में से एक बात ज़रूर है। इसमें सन्देह नहीं। औरों को तत्वज्ञान सिखलाने का बीड़ा उठानेवाले में अल्पज्ञता अथवा नावाक़फ़ियत का

होना एक प्रकार का जुर्म है। और अगर किसी बात को जान बूझ कर उसने ग़लत बयान किया, तो ऐसे महत्वपूर्ण विषय में वह बात चीत करने के लायक़ ही नहीं।

परलोक को किसने नहीं माना? जितने अच्छे अच्छे तत्वज्ञानी हुए हैं, फिर चाहे वे जिस देश में हुए हों, और चाहे जिस समय में हुए हों, सब ने परलोक पर विश्वास किया है। यह बात पुराने तत्वज्ञानियों में और भी ज़ियादह देखी जाती है। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, बौद्ध, क्रिरिस्तान, चीनी और जापानी तो परलोक मानते ही हैं; मिसर, ग्रीस और रोम के पुराने निवासी तक भी परलोक को मानते थे। बहुत करके एक भी ऐसी पुरानी जाति या सम्प्रदाय नहीं है जिसने सज्ञान होकर पुनर्जन्म या परलोक पर विश्वास न किया हो—फिर चाहे उनका विश्वास कम रहा हो, चाहे ज़ियादह; और चाहे सृष्टि और ईश्वर सम्बन्धी उनके विचारों में धर्म्मान्धता की मात्रा अधिक रही हो, चाहे कम,—मनुष्य समुदाय ने अनन्त काल से, परलोक के मानने में शङ्का नहीं की। बढ़े हुए सोनभद्र नद के प्रवाह के समान, मनुष्य जाति की इस प्रचण्ड विचार-परम्परा के विद्यमान रहते, आप को यह कहने की गुस्ताख़ी अथवा बेअदबी सूझी, कि ईश्वर के अस्तित्व को माननेवालों ने, इस लोक में हुई ग़लतियों को दुरुस्त करने का ईश्वर को मौक़ा देने ही के लिए, परलोक की कल्पना कर ली है! क्या ऐसे ही शस्त्रों से आप ईश्वर की सत्ता को माननेवालों के दृढ़तम विश्वास और विचारों को काटना चाहते हैं? आपकी बहादुरी को धन्य! आपकी दिलेरी को धन्य! आपको भी धन्य!

नास्तिक—"न हम में इतनी लियाक़त है और न हमको इस बात का मजाज़ ही है कि हम ईश्वर के न्याय अथवा अन्याय के विषय में कुछ कह सकें—इस तरह, आपही के साथी एक प्रकाण्ड पण्डित कल कहते थे। पर इस तरह टाल टूल करने से क्या कहीं काम चल सकता है? आपकी बात चीत बहुत सख़्त होती है। हमारे कहने पर इतना गुस्सा क्यों?

आस्तिक—सच बात को कहना या क़बूल कर लेना टाल टूल नहीं कहलाता। हां, आप अवश्य टाल टूल करते हैं; क्योंकि आप अपने "प्रकाण्ड पण्डित" की उक्ति को न तो स्वीकार करते हैं और न उसका सप्रमाण खण्डनही करते हैं। "प्रकाण्ड पण्डित" ने जो कुछ कहा बहुत ठीक कहा। ईश्वर के न्याय की सीमा नहीं, वह अनन्त है; मनुष्य की बुद्धि की सीमा है, वह सान्त है। जो वस्तु सीमा-सहित है वह सीमा-रहित की इयत्ता को न तो माप सकती है और न तौल ही सकती है। इस लिए यह कहना, कि हम में इतनी योग्यता और शक्ति नहीं, कि हम ईश्वर की न्यायशीलता पर कुछ कह सकें, बहुत ही समुचित और सत्य है। इस बात को मानना अगर आपको अभीष्ट नहीं तो तर्कशास्त्र के क़ायदे से युक्ति पूर्वक आपको इसका खण्डन करना चाहिए था। सो तो आपने, जैसा कि आपका धर्म्म या फ़र्ज़ था, किया नहीं; "प्रकाण्ड पण्डित" पर टाल मटूल करने का इल्ज़ाम आप लगाने लगे।

नास्तिक—ईश्वर को न हमी ने देखा है और न आपही ने। इस सबब से उसका, या उसकी बातों का मनन, या उनपर विचार, नहीं किया जा सकता।

आस्तिक—ख़ूब कहा! वाह! माफ़ कीजिए; आप भूलते हैं। पहले "विचार करने" और "निश्चयतापूर्वक कहने" का अन्तर आप ज़रा समझ लीजिए। इन दोनों में ऐसा मोटा अन्तर है कि छोटे छोटे लड़के भी उसे जानते हैं; पर, अफ़सोस है, मालूम होता है, आप नहीं जानते। जो चीज़ सीमा-रहित अर्थात् अनन्त है उसके विषय में कोई बात निश्चयतापूर्वक नहीं कही जा सकती; परन्तु, उसका या उसके कुछ हिस्से का मनन, विचार या ग़ौर ज़रूर किया जासकता है। अनन्त का ख़याल या अनन्त की भावना सान्त कर सकता है;

परन्तु उसका पूरा पूरा पता वह नहीं लगा सकता; उसके विषय में पूरे तौर पर वह कुछ नहीं कह सकता; और पूर्णता के साथ उसके रूप और गुण आदि का निश्चय भी वह नहीं कर सकता। आया ख़याल में?

नास्तिक—लेकिन, आप लोगों के हज़ारों बरस के पुराने पण्डितों के अनुसार अगर ईश्वर और उसके नियमों की जाँच नहीं की जा सकती तो उसके विषय में मनन और ख़याल करना व्यर्थ है।

आस्तिक—हरगिज़ नहीं। जिसने तर्क-विद्या पढ़ने का प्रण किया है, वह अगर उसके सब अङ्ग नहीं पढ़ सकता तो क्या उसके एक दो अङ्ग पढ़ लेना व्यर्थ होगा? आपही के सदृश "तर्क-पञ्चानन" पण्डितों का ऐसा ख़याल होगा! ईश्वर के विषय में मनन करना कदापि व्यर्थ नहीं; तत्सम्बन्धी थोड़े से भी थोड़ा ज्ञान श्रेयस्कर है। पर, आप यह तो फरमाइए कि यह आपने कहां सुना कि ईश्वरी नियमों की जांच नहीं की जा सकती? जहां तक हमको ख़याल है, आपने यह सुना है, कि ईश्वरी नियमों के बुरे या भले होने की बाबत कोई फ़ैसला नहीं किया जा सकता। क्या आप "जांच" और "फ़ैसला" इन दो लफ़्ज़ों को समानार्थक समझते हैं? आपकी बातचीत से तो यह ज़ाहिर होता है कि इनका फ़रक जानने भर के लिए आप का इल्म काफ़ी है। तो क्या आपने जान बूझ कर, अपने मतलब के लिए, "फ़ैसला" के लफ़्ज़ को "जांच" से बदल दिया? सचाई को भी कोई चीज़ समझिए!

नास्तिक—जिनको हज़ारों वर्ष हो चुके, जङ्गल में रहनेवाले उन पुराने जङ्गली और नाशाइस्ता पण्डितों की नामुनासिब बातों को, बे किसी सोच विचार के, आप क़बूल करते चले जाते हैं। परन्तु दूसरे की बात पर आप ज़राभी विश्वास नहीं करते।

आस्तिक—आपने हम पर अच्छा इलज़ाम लगाया! हम उसे जिस द्वि-वर्णात्मक शब्द से विशेषणीभूत करना चाहते हैं, सभ्य-समाज में, उसका स्पष्ट उच्चारण नहीं किया जाता। इस लिए हम इतना ही कहते हैं कि वह छठे स्वर से युक्त चवर्ग के चौथे वर्ण से शुरू होता है! नादानी से भरी हुई नामुनासिब बातें हम किसीकी क़बूल नहीं करते; चाहै वे मुर्दा जङ्गलियों की हों; चाहै ज़िन्दा नास्तिकों की। पुराना जङ्गली हो या नया नास्तिक, उसकी ना-मुनासिब बातें सुनने से हम को नफ़रत है। पुराने जङ्गली की जो बात आपको पसन्द न हो, या जो बात आपको ग़लत जान पड़ती हो, उसे बतलाइए और अपने पक्ष को सप्रमाण साबित कीजिए। तब हम दिखलावेंगे कि किसको तर्क-विद्या ज़ियादह तेज़ है। शाइस्ता की या नाशाइस्ता की।

नास्तिक—अच्छा, अब, इस विषय को, कल, तक, मुलतवी रखिए।

इति तृतीयाध्याय।

रूस-जापानी युद्ध।

(जापानी-शूरता का एक छोटा सा उदाहरण)

सरस्वती के पाठकों पर रूस-जापानीय लोम-हर्षण युद्ध के समाचार दैनिक एवं साप्ताहिक सामाचार पत्रों द्वारा अवश्यही विदित होते रहते होंगे। और निःसन्देह बहुतेरे पाठक ऐसे होंगे जो इस भयङ्कर युद्ध के हाल प्रारम्भ से ही ध्यानपूर्वक मनन करते आये होंगे। सरस्वती में दो एक लेख भी इस विषय में प्रकाशित हो चुके हैं। आज हम जापानी शूरता का एक ऐसा उदाहरण देना चाहते हैं जिसे पढ़कर पाठकों को इस बात का कुछ कुछ पता लग जायगा कि जापान अत्यन्त छोटा होने पर भी उस दिगन्त-व्यापी और प्रबल-प्रताप-शाली रूस के दांत, कैसे खट्टे करता चला जाता है कि जिससे योरोप के भी बड़े बड़े शक्ति-शाली नरेश थोड़ा बहुत भयभीत रहा करते

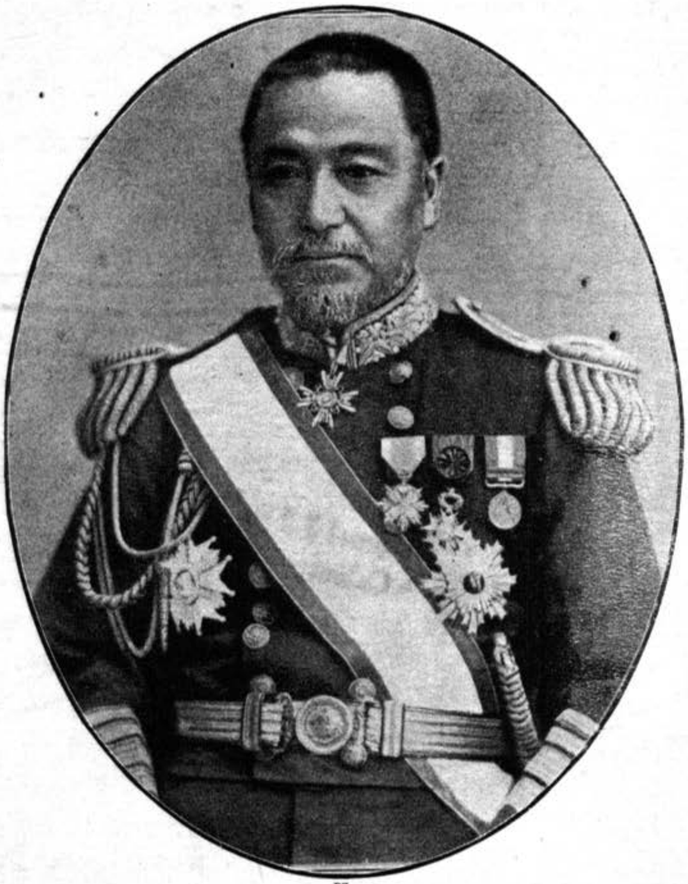
थे; और जो अब तक हर बात में सभी देशों को कुछ न कुछ दबाही लिया करता था।

तारीख़ १३ फ़ेब्रुअरी का दिन बीत चुका है और रात को जापान का लब्ध-कीर्ति प्रतापी जल-सेनाधिपति टोगो अपने युद्ध-पोतों का बेड़ा लिये हुये जापानी विरामस्थल में लङ्गर डाले कुछ विचार में निमग्न है। इसके टारपीडो नौका नामक जल-यानों ने ८-९ फ़ेब्रुअरी की रात को रूसी बन्दर-गाह आर्थर में घुसकर जो हानि रूस के गुरुतम एवं उत्तमोत्तम युद्ध-पोतों को पहुँचाई है; और तत्पश्चात् जापानी दीर्घ युद्ध-पोतों ने भी (Battle-ships) जो जो काम किये हैं; वे हमारे पाठकों से छिपे न होंगे। परन्तु अभी तक एक तीसरे प्रकार के जहाज़ों ने, जिनका नाम टारपीडो नौका-विनाशक (Torpedo-boat-destroyer) है, कुछ भी नाम प्राप्त करने का मौक़ा नहीं पाया है। इस स्थान पर हमको उचित जान पड़ता है कि टारपीडो नौकावों एवं उनके विनाशकों, का सूक्ष्म वृत्तान्त आपसे निवेदन करके, तब आगे बढ़ें; क्योंकि ऐसा होने से आपको इस लेख के आगामी भाग के समझने में सुबिधा हो जायगी।

टारपीडो नामक एक ऐसा प्रचण्ड अस्त्र है जो किसी स्थान से छूटने पर पानी के भीतर ही भीतर चल कर, लक्ष्य पर पहुंच, जिस जलयान में लगता है उसकी दीवार या पेंदे को फोड़ कर, उसमें बड़ा भारी छिद्र कर देता है, जिससे वह जलयान पानी से भर कर डूब जाता है। इस अस्त्र को एक प्रकार का सामुद्रीय गोला कहना चाहिये। यह ऐसा शक्ति-सम्पन्न होता है कि एक एक फ़ुट मोटी लोहे की दीवारों तक को खीरे की भांति काट देता है। जिन नौकावों में ये अस्त्र रहते हैं उन्हें टारपीडो कहते हैं। ये नौकायें बहुत छोटी होती हैं, और इनका काम यही है कि ये बड़े बड़े जल-यानों को तोड़ फोड़ कर बे-काम कर दें। इनके अत्यन्त छोटी होने के कारण प्रायः बड़े बड़े युद्धपोतों के वार इन पर नहीं पड़ सकते और ये फुरती से दौड़ धूप कर इन वारों को बचा लेती हैं। इसी लिए इनको तोड़ने के निमित्त "टारपीडो-नौका-विनाशक" बनाये गये हैं। ये अन्तिम प्रकार के जहाज़ लम्बे, नीचे, एवं अत्यन्त हलके, तथा छोटे होते हैं; और इनके पेंदे केवल आधे या पौन इञ्च मोटे लोहे के बने होते हैं। अल्प-काय-धारी तथा द्रुतगामी होने से यह जहाज़ टारपीडो नौकावों को दौड़ाकर टारपीडो अस्त्र के प्रहार से उन्हें नष्ट कर देता है। यह जहाज़ टारपीडो नौकावों का भी काम करता है; और, यदि किसी भारी युद्ध-पोत के निकट पहुँच पावै, तो उसे भी क्षण मात्र में टारपीडो-प्रहार द्वारा युद्ध के अयोग्य कर सकता है।

आज ऐडमिरल (जल-सेनाधिपति) टोगो इस विचार में पड़ा है कि इन विनाशक जहाज़ों से भी कुछ काम लेना चाहिये। अचानक रात अत्यन्त भीषण रूप धारण कर लेती है और आकाश कज्जलाकार प्रलयकारी मेघों से आच्छन्न हो जाता है। हाथ पैर काष्ठवत् कर देनेवाली अत्यन्त शीतल वायु सवेग सञ्चारित होकर समुद्र को थर्राने लगती है। अन्धकार प्रगाढ़तर होता जाता है, और हिमोपल वृष्टि का भी प्रारम्भ हो चलता है। अवश्य ही ऐसे आपत्काल में किसी जलयान का समुद्र में लङ्गर उठा देने का विचार भी होना असम्भव प्रतीत होता है। परन्तु एडमिरल टोगो और अन्य जापानी शूर वीर यदि ऐसे समय में भी भयभीत होनेवाले होते तो जापान अपने महाप्रबल शत्रु ज़ार से कदाचित् सामना करने का साहस ही न करता। भय को कौन कहै, एडमिरल टोगो के विचार में इससे बढ़ कर पुनर्वार रूस को अचानक हानि पहुंचाने का डौल लगना कठिन जान पड़ता है। यही तो समय है जब रूसियों पर आक्रमण करना चाहिये। क्या रूसी कभी ऐसे समय में भी जापानी आक्रमण की कोई सम्भावना करते होंगे?

बस, ऐडमिरल टोगो ने आज्ञा दे दी कि चुप-चाप जहाज़ों का एक बेड़ा तीसरे ऐडमिरल नगाई



ऐडमिरल टोगो।

को अधीनता में पोर्ट आर्थर पर आक्रमण के लिए इसी समय प्रस्थान करे। इस आज्ञा को सुनते ही वीर-शिरोमणि नगाई और उसके अधीन योद्धाओं तथा मल्लाहों के चित्त में, विघ्नों की घनघोर घटाओं को विदीर्ण करते हुए, षोड़श-कला-सम्पन्न उत्साहेन्दु का उदय हो उठा; और मिकाडो तथा जापान का यश बढ़ाने एवं रूस का मद मर्दन करने की तरङ्गें उठकर उनके हृदयसिन्धु में हिलोड़ें लेने लगीं। फिर क्या था! तुरन्त बेड़े के कूच की सवेग तैयारियां होने लगीं। धन्य जापान! क्यों न तेरे सामने रूस अपने प्रबल प्रताप को भूल कर कम्पायमान हो जाय!

जो काम इस बेड़े को करना है वह कितने जोखों का है, इसका विचार करते ही चित्त चलायमान हो जाता है। रात का जो हाल है वह हम ऊपर लिख ही आये हैं। पर सबसे बड़ी खटके की बात यह है कि ८-९ फ़ेब्रुअरी को रात वाली हानि उठाने के पश्चात्, रूसो, अब एक दम निश्चिन्त न बैठकर, अवश्य ही चौकी पहरे का उत्तम प्रबन्ध किये हुए होंगे। और यद्यपि वे इस भयङ्कर समय में जापानी धावे को विशेष सम्भावना न मानते होंगे, तथापि, इसमें सन्देह नहीं, कि थोड़े से खटके में भी वे लोग अवश्य चौकन्ने हो जायँगे, जिससे इन छोटे छोटे जहाज़ों का बचना कठिन होगा। क्योंकि शब्दहीन जहाज़ फिर भी टारपीडो नौकाओं से बहुत बड़े होते हैं; और ऐसे पतले और हलके होते हैं कि छोटे से छोटे एक ही गोले से भी समुद्रगर्भ में लीन हो सकते हैं। तब उनका गोला गोलियों की वृष्टि के सम्मुख बच जाना कितना दुस्तर है? पर "भय" शब्द ने तो जापानियों के कोष में ठौर ही नहीं पाया है। उन्हें यही ध्यान रहता है कि शत्रु पर यों टूट पड़ेंगे; उसे यों हानि पहुंचावेंगे; उसे यों विमर्दित करेंगे; और स्वयं यों जीते जागते बिना कोई हानि उठाये लौट आवेंगे। अथवा यदि आवश्यकता हुई तो अपने देश और सम्राट् के लिए यों प्राण त्याग देंगे। जापानियों की शूरता का महत्व एक और बात से भली भाँति विदित होता है। अन्य देशीय योद्धा जब किसी कष्टसाध्य कार्य्य के लिए चलने लगते हैं तब वे ईश्वर से यों प्रार्थना करते हैं कि—"हे करुणामय! हम कठिन से कठिन कार्य्य कर सकें; हमारे चित्त में भय का सञ्चार न हो; हमें विजय प्राप्त हो; और कार्य्य पूरा करने के पश्चात् हम सकुशल लौट आवें"। पर जापानी लोग अन्य प्रार्थनाओं के साथ ईश्वर से यह भी माँगते हैं कि—"हम जीते न लौटें; वरन् अपने देश और महाराज के हेतु वीरगति को प्राप्त हों!" धन्य जापान! और धन्य तेरी शूरता! भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इसी प्रकार की शिक्षा दी थी—यथा

> यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
> सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्॥

अर्थात् हे पार्थ! अचानक प्राप्त हुए खुले हुए स्वर्ग के द्वार रूप ऐसे युद्ध को भाग्यशाली क्षत्रिय ही पाते हैं। हमारी और जापानियों की शूरता में इतना ही अन्तर है कि हम स्वर्गप्राप्ति की लालसा से युद्ध में मरना चाहते थे; परन्तु वे देशहितार्थ शरीर पतन चाहते हैं। फिर जब वे स्वयं शरीर पतन चाहते हैं तब दिल तोड़ कर क्यों न लड़ेंगे? और इसी कारण वे कठिन से कठिन मोरचों से काम पूरा करके जीते जागते लौट आते हैं! ज्यों ही किसीके जी में प्राणों का भय आया कि फिर उससे पूरी शूरता कहां सम्भव है! शूर का नाम ही कहे देता है कि उसे युद्ध में अन्धे की भाँति भयकारी पदार्थों को देखना ही न चाहिये। जूलियस सीज़र ने क्या ही ठीक कहा है कि—"कायर लोग मृत्यु के प्रथम ही अनेक बार मर चुकते हैं; पर शूर वीर मृत्यु के प्याले का एक ही बार आस्वादन करते हैं"। इसका तात्पर्य्य यह है कि कायर लोग थोड़ी थोड़ी बात में डरने लगते हैं, कि "हाय मरे! हाय अब न बचेंगे!" पर जो वीर पुरुष हैं वे जब वास्तव में 'मरने लगते हैं,

तभी एक बार, ग्रौर प्रथम बार, जान लेते हैं कि अब हमारा समय आ गया। अस्तु।

जापानी निःशङ्क जलयानों का बेड़ा तैयार होकर बड़े बेग से रवाना हुआ। अवश्य ही जापानियों की समस्त जल-सेना उस छोटे से निरङ्कुश बेड़े के आशीर्वाद दे रही होगी; पर ते भी ऐडमिरल टोगो के चित्त में यह सुन कर, कि वह बेड़ा बड़ी द्रुतगति से देखते देखते अन्तर्धान हो गया, उद्विग्नता उत्पन्न करनेवाले अनेक विचार उठे बिना न रहे होंगे।

हिमवृष्टि ग्रौर भी गम्भीर होने लगती है, ग्रौर वायु का वेग ऐसा बढ़ जाता है, कि धीरे धीरे एक भला चङ्गा तूफ़ान बेड़े का चित्त चञ्चल करने लगता है; ते भी उन छोटे जहाज़ों का बेड़ा आगे के चला ही जा रहा है। पर भारी वृक्षों के भी जड़ से उखाड़ कर फेंक देनेवाली वायु का सामना छोटे छोटे शब्दहोन जहाज़ कहां तक कर सकते हैं, जब कि बड़े बड़े युद्ध-पोत तक उसके सामने नितान्त विवश हो जाते हैं? सो इस निरङ्कुश बेड़े के जहाज़ प्रबल वायु के चक्कर में पड़ कर तितर बितर हो गये ग्रौर कोई भी दो पोत एक साथ न रह सके। ते भी अपनी जान पर वे ऐसे खेल रहे हैं, कि घर वापस लैाटने का विचार तक उनके जी में नहीं उठता; वरन् वे भीम-वेग से धुवाँ उड़ाते पोर्ट आर्थर ही की ओर यों धावित हैं माने कोई तूफ़ान के सताये हुए जहाज़ द्रुतगति से अपने बन्दरगाह में शरण लेने जाते हों। परन्तु ऐसी ग्रँधियारी एवं भयङ्कर रात्रि में क्या आशा की जा सकती है कि नियत स्थान तक उनका पहुंचना भी हो सकैगा या नहीं। अन्त में अन्धकार, वायु ग्रौर हिम की इतनी अधिकता हो गई कि मनमानी ओर एक जहाज़ का भी ले चलना असम्भव हो गया; ग्रौर पुनः एकत्रित होकर पोर्ट आर्थर पर आक्रमण करने की सब जहाज़ों को आशा बिलकुल ही जाती रही। ऐसे समय में यही उचित जान पड़ैगा कि प्रत्येक जहाज़ जैसे बन सकै अलग अलग टोते टटोलते अपने सामुद्रिक विरामस्थल तक पहुंचने में यत्नवान् होजाय। क्योंकि एक ते अब पोर्ट आर्थर तक पहुंचना ही अत्यन्त कठिन है; ग्रौर दूसरे केवल एक जहाज़ वहां पहुंच कर करही क्या लेगा? एक गोला भी लग जाने से उसका वारा न्यारा हो जायगा। हाँ, यदि ८—१० जहाज़ मिल कर साथ साथ जाते ते सम्भव था कि उनमें से दो एक गोलें से बचबचाकर एकाध रूसी वृहत् युद्ध-पोत (Battle-ship) तोड़ भी आते! पर कठिनाइयें के सम्मुख काम करने के जापानी लोग अपना भाग्य समझते हैं; ग्रौर "हमारा प्राचीन निपान" यही विचार उन्हें प्रत्येक स्थान पर साहस प्रदान करता है। सो ये जहाज़ जैसे बन पड़ता है तैसे सभी कठिनाइयां झेलते आगे के ही बढ़ते जा रहे हैं। अन्ततोगत्वा, प्रायः तीन बजे, रात के, असागिरी नामक एक विनाशक जहाज़ इधर उधर टकराते, ठोकरें खाते, पोर्ट आर्थर के मुँह तक पहुंच ही ते गया। वीर वर कप्तान इसाकवा इसका अध्यक्ष है। उसका चित्त अब प्रसन्नता ग्रौर उत्साह से प्रफुल्लित हो जाता है। पर ज्यों ही असागिरी पोर्ट आर्थर के मुहाँने पर पहुंचा कि रूसियें की सर्चलाइट* का वैद्युतिक प्रकाश उसपर पड़ा। ते भी असागिरी भयभीत नहीं होता ग्रौर उसके यह ध्यान ही में नहीं आता कि कहां वह ग्रौर कहां जगद्विख्यात पोर्ट आर्थर! जिस पोर्ट आर्थर के उत्तुङ्ग दुर्गों से तीन सैा माइकल-मद-विदारिणी प्रलयकारिणी तोपें अपने भयङ्कर मुँह बाये हुए समुद्र की ओर घूर रही हैं, उसी पोर्ट आर्थर का सामना एक छोटा सा विनाशक जहाज़ करै! आश्चर्य!! महा आश्चर्य!!!

क्या तीन सैा तोपें के एकदम फ़ायर होने से एक भी गोला असागिरी पर न पड़ैगा? परन्तु

---

* बड़े बड़े बन्दरगाहें पर बिजुली के प्रकाश का प्रबन्ध इसलिए रहता है कि यदि शत्रु का कोई जहाज़ इत्यादि उनके पास रात के आजाय ते उसे दूर से ही देखकर गोला गोलियें की वृष्टि द्वारा उसको जलमग्न कर दें—इसी प्रकाश का नाम सर्च लाइट (Search light) है।

कायरों की भाँति असागिरी के लोग मरने के प्रथम ही क्यों मृत्यु के स्वप्न देखने लगते ? और फिर पृथ्वी पर ऐसा कौन कठिन कार्य्य है जो हिम्मत से सुगम न हो जाय ? बस, वीर कप्तान ने पूर्ण वेग से असागिरी को उस भयङ्कर दुर्ग की ओर छोड़ ही तो दिया और उधर से तीनों सौ तोपों से उसपर गोलों की वृष्टि होने लगी। कच्छपावतार के समय जैसे समुद्र मथा गया था, वैसे ही उन तोपों के गोलों ने अपने सम्मुख के सिन्धु को मथ डाला; पर भाग्यवश असागिरी पर एक भी गोला न पड़ा; नहीं तो उसका कहीं पता तक न लगता। सत्य है—

आयू रक्षति मर्म्माणि आयुरन्नम्प्रयच्छति।
अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यन्न पलायनम्॥

धनुष से चलाये हुए बाण की भांति शीघ्रता से असागिरी पोर्ट आर्थर के भीतर प्रवेश कर गया। अब यहां पर तोपों के गोलों की वर्षा उसपर नहीं की जा सकती थी; क्योंकि, ऐसा होने से रूसी जलयानों पर (जिनका पूरा बेड़ा बन्दर के भीतर ही खड़ा था) गोला पड़ने का खटका था। वहां जाकर उसने क्या देखा कि एक पर्व्वताकार युद्ध-पोत (Battle-ship) खड़ा हुआ अपने भीमकाय एञ्जिन की सघन धूम्रमाल से मेघाच्छन्न आकाश की कालिमा को द्विगुणित कर रहा है। इस कुम्भकर्ण पर असागिरी ने एक टारपीडो वज्र का प्रयोग किया। उस समय उसके आनन्द का ठिकाना न रहा, कि जब उसने अपने नेत्रों से देख लिया कि उक्त टारपीडो अपने लक्ष्य पर ठीक जा पड़ा। अब असागिरी शीघ्रता से लौट पड़ा, क्योंकि, युद्ध-काल में एक बड़े युद्ध-पोत का तोड़ देना शत्रु को करोड़ों रुपयों से भी अधिक हानिकारी है। यों भी ऐसे जहाज़ों का मूल्य एक एक डेढ़ डेढ़ करोड़ मुद्रा होता है; परन्तु युद्ध के समय तो उन्हें अमूल्य ही समझना चाहिये। तब, शत्रु को इतनी बड़ी हानि पहुंचा देने पर एक साधारण विनाशक जहाज़ और कुछ अधिक करने की आशा ही क्या कर सकता है? रूसी जहाज़ों ने भी इतनी देर में इस साहसी क्षुद्र शत्रु पर गोला गोलियों की बेतहाशा वृष्टि की। यहां तक कि कुछ रूसी टारपीडो बोटों (नौका) ने उसके निकट आ आ कर उसपर आक्रमण किया। परन्तु असागिरी उन सबसे अकेला ही लड़ता, और प्रत्युत्तर में उन सब पर गोली चलाता, एवं उनमें से एक को जलमग्न करता हुआ, इस अनोखे चक्रव्यूह के बाहर निकल ही तो आया। यहां पोर्ट आर्थर के दुर्गों पर से तीनों सौ तोपों ने पुनः प्रचण्ड पावकोद्‌गार द्वारा उसकी भीषण विदाई प्रारम्भ कर दी। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जो लोग स्वयं अपनी सहायता करते हैं, उनकी ईश्वर भी सहायता करता है। "Heaven helps those who help themselves." जब असागिरी ने इस अद्वितीय शूरता से काम किया तब कब सम्भव था कि ईश्वर उसका साथ न देता? असागिरी सभी आपदाओं से बचता हुआ पोर्ट आर्थर की तोपों की पहुंच के बाहर हो गया। और उसके कमांडर कप्तान इसाकवा एवं अन्य जन-समुदाय जीते जागते रूसियों को भारी हानि पहुंचा कर मानो भट्ठे में घुस कर जीवित सिंह की मोछ उखाड़ कर निकल आये। धन्य असागिरी! और धन्य जापानी सैनिक! तुमने वीरता का झण्डा खड़ा कर दिया और अचल यश प्राप्त किया। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि शूरता के कामों की जहां कहीं प्रतिष्ठा होगी वहां तुम्हारा नाम बड़े मान के साथ लिया जायगा। तुमने हतभाग्य एशिया का मुख समुज्वल कर दिया। आज पृथ्वीमण्डल के सब लोग एक स्वर से कह रहे हैं कि जलयुद्ध में इससे बढ़कर वीरता का काम संसार भर में कभी किसीने नहीं किया। जिस पोर्ट आर्थर की धरातल के उत्तमोत्तम सुदृढ़ बन्दरगाहों में गणना होती है, जिसकी प्रचण्ड तोपों को देखकर समस्त भूमण्डल के महा-शक्तिशाली युद्धपोतों में से कदाचित् ही किसीको ऐसे आक्रमण करने की

हिम्मत पड़ सकती, उसी भयङ्कर स्थान में तुमने अकेले ही घुस कर गोले गोलियों की भरपूर बौछाड़ की कुछ भी परवाह किये बिना अपना काम कर ही लिया। तुम्हारे ही भाग्य में ऐसा बदा था। तुमशत-बार धन्य हो! इस भयङ्कर हानि से रूसी एडमिरल स्टार्क का चित्त व्याकुल हो उठा और समस्त सेना में बड़ा ही बिकराल कोलाहल होने लगा।

इतने ही में माना यह शोर मचा कि-"आवा कपि लङ्का जेहि जारी"; क्योंकि ५ बजे प्रातःकाल भद्रा के पीछे भद्रपुच्छ की भाँति कमान टकानाशा के आधिपत्य में हयाटरी नामक दूसरा विनाशक जहाज़ आर्थर बन्दर के मुहाने के निकट जा उपस्थित हुआ। इस बार धावा करना और भी कठिन है; क्योंकि इसी समय एक जहाज़ अपना काम करके निकल जा चुका है। फिर दिन निकट होने के कारण अब किञ्चिन्मात्र भी विलम्ब होने से कार्य्य-सिद्धि में और भी खटका है। परन्तु तो भी हयाटरी ने धैर्य्य नहीं छोड़ा और तीन सौ तोपों के प्रचण्ड पावकोद्गार का कुछ भी भय न करके वह मुहाने के निकट जा लगा। इस बार विशेष चैतन्यता एवं ऊषा-काल होने के कारण भीतर घुसना निश्चित मृत्यु के मुँह में अपने को समर्प्पण करना था। अतः हयाटरी बाहर ही से ताक झांक में प्रवृत्त हुआ। कुछ ही देर बाद हयाटरी देखता क्या है, कि भाग्य-वश व्यारिन नामक एक दूसरा दीर्घ-काय रूसी संग्रामपोत (Battle-ship) बन्दर के भीतरी ओर मुहाने ही पर खड़ा अपनी मृत्यु का निमन्त्रण कर रहा है। हयाटरी ने तुरन्त अपने अचूक टारपीडो का वार उस भयावने शत्रु पर किया। फिर वह देखता क्या है कि वह जलयान फूटकर पानी से भरने लगा। हयाटरी को निश्चय हो गया कि अब यह भी पहली श्रेणी का रूसी जलयान युद्ध के अयोग्य हो गया। बस हयाटरी भी अपना काम सिद्ध करके तुरन्त बड़े वेग से वहां से चलता हुआ और असागिरी ही की भाँति समस्त आपदाओं से बचता अपने बेड़े की ओर चला गया।

इन दोनों विनाशक जहाज़ों ने आज दो घण्टे में जापान का इतना काम कर लिया, जितना करने को शायद उसे एक पक्ष में भी आशा न थी। इन्होंने रूस के सात प्रथम श्रेणी के जलयानों में से दो को दो ही घण्टों में युद्ध के अयोग्य कर दिया। फिर दिन निकल आने से शेष विनाशक जहाज़ भी किसी विशेष कार्य्य की आशा न रहने से बेड़े की ओर चले गये और इस बेड़े ने पलट कर अपनी शेष सेना से कर्ण मधुर धन्यवाद के शब्दों से अपना चित्त प्रसन्न किया। सत्य है! जो मनुष्य देश-हितार्थ अपने प्राणों को न्योछावर किये फिरता है, वह सभी कुछ कर सकता है। उसका साहस धन्य है। इसी अपूर्व साहस के कारण युद्धारम्भ में ही जापानियों ने वे वे काम कर दिखाये कि—

"जार जार रोये जार राँड़ के समान देखि
उदै भानु उदित मिकाडों महाराज को"।

श्यामविहारी मिश्र,
तथा
शुकदेवविहारी मिश्र।

पुस्तक परीक्षा।

युक्तिसिद्ध-मांस-निषेध। पण्डित दरियावसिंह कृत। १० पृष्ठ की पुस्तक है। इसका विषय नाम ही से सूचित है।

✲

गङ्गा की नींद। लाला मानिकराज मल्ल कृत। पृष्ठ संख्या १०। पुस्तक पद्य में है। भाषा उर्दू; छन्द उर्दू; परन्तु अक्षर देवनागरी। भारत की दुर्दशा, आपत्ति, अवनति और विदेशियों के द्वारा उसपर किये गये अत्याचारों का वर्णन करके गङ्गा को जगाने के लिए इसमें प्रार्थना की गई है।

✲

किताबों के खोज की रिपोर्ट। सरस्वती के पढ़नेवाले यह ज़रूर जानते होंगे कि, बनारस में, नागरी-

प्रचारिणी नाम की एक सभा है। वह हम सब की प्रतिष्ठा का पात्र है। उसका नाम भी सरस्वती के टाइटिल-पेज पर छपा रहता है। पाठक यह भी जानते होंगे कि कुछ समय से यह सभा हिन्दी किताबों का खोज कर रही है। वे शायद यह भी जानते होंगे कि इस खोज के बदले में गवर्नमेण्ट ५००) रु० सालाना देने की कृपा करती है। सभा की पहली रिपोर्ट परसाल छप कर प्रकाशित हुई थी। वह १९०० ई० की थी। उसकी आलोचना भी सरस्वती में छपी थी।

बहुत खुशी की बात है कि १९०१ ईसवी की भी रिपोर्ट छप कर प्रकाशित हो गई। यह १० मार्च १९०२ को लिखी गई थी। पर प्रकाशित १९०४ ई० में हुई है और बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए० के छपे हुए सलाम के साथ उनके खास खास दोस्तों में इसी साल, मई के महीने में, यह बँटी है। बाबू साहब किताबों के खोज के सुपरिंटेंडेण्ट हैं।

इस खोज की रिपोर्ट की ख़बर बँगला मासिक पुस्तक "प्रवासी" में पढ़ कर इसकी एक कापी हमने गवर्नमेण्ट प्रेस, इलाहाबाद, से मँगाई। इसे पढ़ कर बड़ा आनन्द हुआ। सचमुच नागरी-प्रचारिणी सभा बड़ा काम कर रही है। हिन्दी जाननेवाले और उसकी हितेच्छा रखनेवाले सभी उसके कृतज्ञ हैं। सभा की कार्य्य-कारिणी कमिटी के सभी मेम्बर प्रशंसा के पात्र हैं। परन्तु बाबू श्यामसुन्दरदास की बाबत तो जो कुछ कहा जाय सभी थोड़ा है। आपही की कृपा से यह रिपोर्ट आंखों के सामने आई है।

इस रिपोर्ट में सिर्फ १०४ पन्ने हैं; परन्तु क़ीमत इसकी ३) रु० है। अच्छी चीज़ की क़ीमत ज़ियादा हुआ ही करती है। इसके पन्नों में यह सामग्री हैं—

रिपोर्ट	५ पन्नों में
किताबों की नोटिसें ...	९१ पन्नों में
ग्रन्थकारों के नाम ...	१ पन्ना में
ग्रन्थों के नाम ...	२ पन्नों में
राजापुर और अयोध्या के तुलसीकृत रामायण के ४ पन्नों की तसवीर	१ पन्ना में
	१००

कुछ पन्ने कोरे हैं; उनको भी गिन लेने से कुल पन्ने १०४ हो जाते हैं।

गवर्नमेण्ट का हुक्म है कि रिपोर्ट छोटी हुआ करे। इसी सबब से ५ पन्ने से भी कम में ही वह खतम कर दी गई है। बाबू श्यामसुन्दरदास रिपोर्ट में लिखते हैं कि १९०१ ई० में २५० किताबों की आलोचना हुई। परन्तु ११४ आलोचनायें इसमें नहीं शामिल की गईं; क्योंकि जिन किताबों की वे समालोचनायें थीं वे बहुतही क्षुद्र थीं। शेष १३६ आलोचनायें इस रिपोर्ट में छपी हैं। इन १३६ आलोचनाओं में १२९ किताबों का ज़िकर है। ये १२९ किताबें ७३ ग्रन्थकारों की बनाई हुई हैं। इन ७३ ग्रन्थकारों में से—

१	बारहवीं	शताब्दी में
१	चौदहवीं	
१२	सोलहवीं	
१२	सत्रहवीं	
१९	अट्ठारवीं	
१५	उन्नीसवीं	
६०		

विद्यमान थे। शेष १३ के समय का पता नहीं लगा। जिन किताबों की आलोचनायें इसमें छपी हैं उनमें से, कुछ को छोड़ कर, और सब उन्नीसवीं शताब्दी को नक़ल की हुई हैं। रिपोर्ट में अयोध्यावाली रामायण, पृथ्वीराजरासो, सतसईवाले विहारीलाल और सुन्दरी कुँवरि नामक कृष्णगढ़ की एक ग्रन्थकर्त्री के विषय में, मुख़तसिर तौर पर, चर्चा है।

इस रिपोर्ट में यह नहीं लिखा गया कि कहां कहां किताबों की खोज की गई; किस किसने खोज की; कितने कितने दिन तक एक एक जगह में रहना

पड़ा। परन्तु नोटिसों (समालोचनाओं) के देख कर हिसाब लगाने से जान पड़ता है कि जिन किताबों की आलोचनायें की गई हैं वे नीचे लिखे हुए शहरों में हैं। किस शहर की कितनी किताबों की आलोचनायें हुई हैं यह भी हम नीचे, उस शहर के नाम के सामने, लिखते हैं—

जोधपुर	५३
कलकत्ता	३५
बनारस	२२
रीवां	२०
लखनऊ	३
मिर्ज़ापुर	१
राजापुर	१
अयोध्या	१
कुल	१३६

इन १३६ आलोचनाओं के लिए गवर्नमेण्ट ने ५००) रु० देने की उदारता दिखलाई। इस हिसाब से एक एक आलोचना ३ रु० १० आ० ९ पा० में पड़ी। यह कुछ महँगी मालूम होती है। परन्तु खोज करने के परिश्रम; दूरस्थ नगरों के जाने के क्लेश; आलोचना और रिपोर्ट लिखने के परिश्रम का ख़याल भी तो करना चाहिए। कहां कलकत्ता और कहां जोधपुर?

जिस साल की यह रिपोर्ट है उस साल कुल ८ शहरों में खोज हुई। किम्वा ८ शहरों में रक्खी हुई किताबों की आलोचनायें लिखी गईं। इन ८ में से लखनऊ, मिर्ज़ापुर, राजापुर और अयोध्या की किताबों की सिर्फ़ ६ समालोचनायें छपीं। यदि इनको छोड़ दें और शेष १३० समालोचनाओं के ५००) रु० में बाँटें तो, अपने अपने शहर की समालोचनाओं की संख्या के अनुसार, नीचे लिखे अनुसार फल निकलता है—

शहर	आलोचना	क़ीमत
जोधपुर	५३	रु० २०४
कलकत्ता	३५	रु० १३५
बनारस	२२	रु० ८५
रीवाँ	२०	रु० ७६
	१३०	रु० ५००

आना पाई का हिसाब इस लेखा में हमने छोड़ दिया है। सबसे अधिक रुपया जोधपुर की किताबों की आलोचना के हिस्से में आता है। रिपोर्ट के आरम्भ में लिखा है कि मुंशी देवीप्रसाद, मुंसिफ़, जोधपुर, ने बहुत सी किताबों की आलोचनायें भेजी हैं। सम्भव है ये ५३ आलोचनायें उन्हींने भेजी हों; किसीको जोधपुर जाने की ज़रूरत न पड़ी हो। कलकत्ते की किताबों की जो ३५ आलोचनायें हैं उनमें से एक आलोचना पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र के यहां पाई गई एक किताब की है; शेष सब एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालय में रक्खी हुई किताबों की हैं। शायद उनके खोजने में भी, खोज करनेवालों के बहुत ज़ियादा तकलीफ़ न उठानी पड़ी होगी। बनारस की पुस्तकों की २२ समालोचनाओं में से १९ समालोचनायें बाबू राधाकृष्णदास के यहां की किताबों की हैं; २ पण्डित सुधाकर द्विवेदी के यहां की किताबों की हैं; और १ बाबू काशीप्रसाद के यहां की एक किताब की है। हमको विश्वास है, बाबू राधाकृष्णदास और पण्डित सुधाकर द्विवेदी ने भी खोज करनेवाले महाशयों को किताबें दिखलाने में थोड़ा ही कष्ट दिया होगा। रहीं रीवां की किताबों की २० आलोचनायें। उनमें से १२ आलोचनायें रीवां राज्य के पुस्तकालय की किताबों की हैं; ५ पण्डित साधुप्रसाद तिवारी के यहां की किताबों की हैं; और शेष ३ और दे आदमियों के यहां की किताबों की हैं। इनके खोज के लिए शायद कोई ख़ास आदमी भेजा गया हो; या शायद जिस वक़्त नागरीप्रचारिणी सभा का डेप्युटेशन चन्दे के लिए रीवां गया था उसी वक़्त यह काम भी कर लिया गया हो।

खोजने में चाहे कम परिश्रम पड़ा हो; या चाहे कुछ भी न पड़ा हो; परन्तु रिपोर्ट लिखना; पुस्तकों के आद्यन्त का नमूना देना; अङ्गरेज़ी और हिन्दी, दोनों भाषाओं में, पुस्तक के विषय और कर्ता आदि का उल्लेख करना क्या कम परिश्रम का काम है? हमारी समझ में तो सिर्फ़ बघेलवंश-वर्णन, यन्त्रराज-विवरण, राना रासा और भागवत भाषा का पता लगाने ही का मूल्य ५०० रु० होना चाहिए।

इसमें जिन पुस्तकों की समालोचनायें हुई हैं उनके आदि और अन्त का थोड़ा थोड़ा नमूना भी हिन्दी में दिया गया है। पुस्तक और पुस्तककर्ता के विषय में जो बातें लिखी गई हैं वे हिन्दी और अङ्गरेज़ी दोनों भाषाओं में हैं। परन्तु हिन्दी और अंगरेज़ी में जो कुछ लिखा गया है वह तुल्य नहीं है। कहीं किसी में कुछ कम है, कहीं किसी में कुछ ज़ियादा। पुस्तक इत्यादि के विषय में अंगरेज़ी में जो नोट्स हैं वे प्रायः अधिक विस्तार से लिखे गये हैं। एक नमूना देखिए—

No. 60.—हनुमान बाहुक Verse. Substance—Country-made paper. Leaves—34. Size 6½ × 4 inches. Lines—10 on a page. Extent 310 Slokas. Appearance—ordinary. Incomplete. Incorrect. Character—Devanagari. Place of deposit—Asiatic Society of Bengal, Calcutta.

Hanumana Bahuka. The praises of Hanuman, by Gosain Tulsi Dasa. The manuscript is dated Samvat 1859 (1802 A. D.). It is said that Tulsi Dasa wrote two different sets of *verses* in praise of Hanuman. The *verses* in this manuscript have not been generally printed.

इस पुस्तक के सम्बन्ध की हिन्दी सुनिए—

Subject.—हनुमानजी की स्तुति।

Note.—गुसाईं तुलसीदास कृत। यह प्रति सम्वत् १८५९ की लिखी हुई है।

बस; इतनी ही हिन्दी काफ़ी समझी गई है। अङ्गरेज़ी जाननेवालों को पुस्तकों और पुस्तककर्ताओं का अधिक परिचय देना शायद सभा ने आवश्यक समझा है। या शायद गवर्नमेण्ट के जानने के लिए अधिक अङ्गरेज़ी लिखने का कष्ट उठाना उसने गवारा किया है। इससे यह भी सूचित होता है कि हनुमानबाहुक ऐसी छोटी छोटी किताबों के खोज की भी सभा या खोज के सुपरिण्टेडेण्ट आवश्यकता समझते हैं। शायद पुस्तक की छुटाई बड़ाई या योग्यता का ख़याल उन्होंने कम किया है; उसके रूपकी प्राचीनता का अधिक। परन्तु इस रिपोर्ट में ऐसी भी बहुत सी छोटी छोटी पुस्तकों की आलोचनायें हैं जिनको नक़ल किये गये अभी सिर्फ़ तीस ही चालीस वर्ष हुए। अस्तु।

हिन्दी के "नोटों" में से किसी किसी की भाषा बड़ी ही विलक्षण है। यथा—

(क) No. 94.—"श्रीमद्भागवत भाषा। ललित राम, जोधपुर, के यहां की किताब"।

Note.—"कर्ता का नाम रसजानि दास है जो स्वामी प्रियादास के चेले थे। यह ग्रन्थ जेठ वदि ६ मंगलवार संवत् १८०७ को संपूर्ण हुआ। जिस प्रति से यह नोटिस की गई है उसकी समाप्ति में संवत् मिति नहीं है। लेखक का नाम साध रामरतन है वह अभी दो तीन वर्ष पहले काल प्राप्त हुआ है"।

यह बिलकुल यथातथ्य कापी है।

(ख) एक और सुनिए—

No. 84.—"भगवत गीता। मुंशी देवी प्रसाद मुंसिफ, जोधपुर के यहां की किताब"।

Note.—"ग्रन्थ व्रज भाषा में आनन्दराम का बनाया हुआ है। और हाल इस कवि का मालूम न हुआ। यह ग्रन्थ कातिक सुदि १ रविवार संवत १७६१ को संपूरण हुआ है और जिस प्रति से यह नोटिस की गई है वह तृतीय असाढ़ सुदि ११ संवत १८९६ की लिखी गई थी"।

(ग) एक और—

No. 96.—"रङ्ग झर। साधु निर्मल दास, गांव बेरू, जोधपुर, की किताब।"

Note.—"इस ग्रन्थ को रूपनगर के महाराज राजसिंघ जी की बाई सुन्दर कुंवरि ने मंगसर सुदि १० चंद्र वार संवत १८४५ शाके १७१० को सम्पूर्ण किया + + + "

यह भाषा मुंशी देवीप्रसाद की है; या उनके किसी लेखक की है; या सभा के किसी कार्य्यकर्ता की है; या खोज के सुपरिंटेंडेण्ट की है—यह राम जाने। शायद गवर्नमेण्ट प्रेस के कर्मचारियों ने भी इसे अपनी कृपाकटाक्ष से पुनीत किया हो? या तो काम बहुत अधिक होने के कारण खोज के अधिकारियों ने बाहर से आई हुई नोटिसों को पढ़ा ही नहीं; या उसी सबब से प्रूफ पढ़ने में असावधानता हो गई; या प्रूफ ही नहीं आये। इसके सिवा और क्या कहा जाय। सभा से प्रार्थना है कि वह इस ओर ध्यान दे।

एक बात हमारी समझ में नहीं आई। इस रिपोर्ट के अन्त में बाबू श्यामसुन्दरदास का नाम छपा है। पर नामके आगे उनके अधिकार के सूचक कोई शब्द नहीं हैं। न "सेक्रेटरी नागरीप्रचारिणी सभा" है और न "सुपरिण्टेण्डेण्ट खोज" है। तो क्या उन्होंने निज के तौर पर यह रिपोर्ट लिखी है? क्या सभा से इसका कोई तअल्लुक़ नहीं?

यह लेख लिख चुकने पर हमने सुना कि नागरीप्रचारिणी सभा किसी को अपने खोज की रिपोर्ट की समालोचना करने के लायक़ ही नहीं समझती। यदि यह बात सच है तो सभा की इस राय पर हम को अफ़सोस है।

❀

आत्म-विनोद। श्रीत्रिलोचन झा कृत। इसमें पुस्तककर्ता की समस्या-पूर्ति और स्फुट कविताओं का संग्रह है। कोई कोई कविता सरस और अच्छी है।

❀

मानसलहरी। श्रीमहावीरसिंह वर्म्मा कृत। आकार बड़ा। पृष्ठ ४४। भूमिका ११ पृष्ठ की। नीति, ज्ञान, वैराग्य, और शृङ्गार, सभी कुछ इसके पद्यों में है।

❀

प्रेमशतक। वृन्दावननिवासी गोस्वामी गोबर्द्धनलाल कृत। इसमें १०८ दोहे हैं। छपाई अच्छी है। कविता भी अच्छी है। गोस्वामीजी इसे बिना मूल्य देते हैं।

❀

शोकाश्रु। यह अश्रुपात पूर्वोक्त गोस्वामी गोबर्द्धनलालजी की लेखनी ने किया है। इटावा के गोस्वामी गोपीलालजी के पञ्चत्व को प्राप्त होने पर यह शोक किया गया है। कुल ४१ दोहे हैं। इसके आगे मातृ-वियोग पर भी कुछ दोहे हैं। यह पुस्तक भी बिना मूल्य दी जाती है। यह भी अच्छी है।

❀

त्रैभाषिक-व्याकरण-शब्दावली। पण्डित व्रजवल्लभ मिश्र, सामोद (जयपुर) कृत। अंगरेज़ी, फ़ारसी और हिन्दी-व्याकरण के पारिभाषिक शब्दों की तालिका। या यों कहिए कि इन तीनों भाषाओं के समानार्थक शब्दों का एकत्रीकरण। पुस्तक बहुत उपयोगी है और योग्यता से लिखी गई है। छपाई भी अच्छी है। काग़ज़ भी अच्छा है। मूल्य ४ आना। इसमें दो एक जगह पर हमको त्रुटियां मिलीं; परन्तु उनसे पुस्तक की उपयोगिता को विशेष हानि नहीं पहुँच सकती।

❀

श्रीरामकृष्ण परमहंस का जीवनचरित। इसके अन्त में परमहंस जी के उपदेश भी हैं। स्वामी विज्ञानानन्द ने यह चरित और उपदेश संग्रह कराये हैं। मगर किसने संग्रह किये हैं यह नहीं लिखा गया। पुस्तक में १५० पृष्ट हैं। वह काशी के तारा प्रेस में छपी है। परन्तु उसमें परमहंस जी और स्वामी विवेकानन्द के जो चित्र हैं वे इण्डियन प्रेस, प्रयाग, के छपे हुए हैं। यद्यपि इस पुस्तक की भाषा अच्छी नहीं है और छापे की भी अनेक भूलें रह गई हैं, तथापि एक बार यह पढ़ने लायक है। परमहंस जी का चरित पढ़ने को किसका जी न चाहेगा? और उनके उपदेशों की तो क्या कहना है? वे तो अमृतमय हैं। पुस्तक का मूल्य १)। ब्रह्मवादिन क्लब, प्रयाग, से मिल सकती है।



मुंशी नवलकिशोर, सी० आई० ई० ।

सरस्वती
सचित्र मासिक पत्रिका।
१९०४
भाग ५] नवम्बर, १९०४ [संख्या ११

विविध विषय।

इस संख्या के आरम्भ में लखनऊ के मशहूर मुंशी नवलकिशोर, सी० आई० ई०, का चित्र दिया जाता है। आप अपने ही बाहुबल और बुद्धिवैभव से बहुत बड़े वैभव को पहुँचे थे। आप ही की बदौलत हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी और अरबी की किताबें आज कल घर घर में फैली हुई हैं। इस समय तो और भी अनेक प्रेस हो गये हैं, और सैकड़ों तरह की पुस्तकों का प्रचार कर रहे हैं; परन्तु, पहले, इस प्रान्त में, केवल मुंशी जी ही का प्रेस नाम लेने के लायक़ था। इन्होंने प्रेस के काम में बहुत बड़ी उन्नति की। ये गवर्नमेण्ट के विशेष कृपापात्र थे। इनका परलोक हुए कई वर्ष हुए। यदि सामग्री इकट्ठा हो गई तो इनका जीवनचरित भी, किसी समय, सरस्वती में प्रकाशित किया जायगा।

***

भारतवर्ष में जितनी भाषायें, उपभाषायें, या बोलियां हैं, उन सबका इतिहास ग्रियर्सन साहब बहुत दिनों से लिख रहे हैं। इस इतिहास की कितनी जिल्दें होंगी, और प्रत्येक जिल्द में क्या क्या रहैगा, यह नीचे दिया जाता है—

जिल्द		विषय
१		भूमिका
२		मान ख्मेर और ताई भाषायें
३	भाग १	तिबत और उत्तरी आसाम की तिबत-ब्राह्मी भाषायें
	" २	तिबत-ब्राह्मी भाषाओं की बोदो, नागा और काचिन शाखायें
	" ३	तिबत-ब्राह्मी भाषाओं की कूकी-चिन और ब्राह्मी शाखायें
४		द्राविड-मुण्डा भाषायें
५		हिन्दू-आर्य-भाषाओं की पूर्वी शाखा
	भाग १	बँगला और आसामी
	" २	बिहारी और उड़िया

जिल्द्		विषय
६	"	हिन्दू-आर्य-भाषाओं की मध्यवर्ती शाखा (पूर्वी हिन्दी)
७	"	दक्षिणी शाखा (मराठी)
८	"	उत्तर-पश्चिमी शाखा (सिन्धी, लहँडा, काश्मीरी, और संस्कृत से सम्बन्ध न रखनेवाली भाषायें)
९		हिन्दू-आर्य-भाषाओं की मँझली शाखा
	भाग १	पश्चिमी हिन्दी और पञ्जाबी
	" २	राजस्थानी और गुजराती
	" ३	हिमालय की भाषायें
१०		ईरानी शाखा
११		"गिप्सी" लोगों की भाषायें और परिशिष्ट ।

इस तरह सब ११ जिल्दें होंगी। जिन जिल्दों में एक से अधिक भाग हैं वे सब भाग अलग अलग छपेंगे। सबको मिलाकर कोई सोलह सत्रह किताबें निकलेंगी और सबके मोल लेने में १०० रुपये के क़रीब ख़र्च होंगे।

इस इतिहास के कई भाग निकल चुके। ज्योंही एक तैयार हो जाता है त्योंही वह प्रकाशित कर दिया जाता है। इनको देखकर ग्रियर्सन साहब के प्रचण्ड पाण्डित्य, परिश्रम और अध्यवसाय की सहस्र मुख से प्रशंसा करने को जी चाहता है। प्रत्येक भाषा, शाखा और उपशाखा का आपने इतिहास लिखा है; यह बतलाया है कि वह कहां बोली जाती है; कितने आदमी उसे बोलते हैं; उसका व्याकरण कैसा है और दूसरी दूसरी भाषाओं से उसका क्या सम्बन्ध है। प्रत्येक भाषा के आपने नमूने भी दिये हैं; उनकी प्रतिलिपि भी अङ्गरेज़ी में दी है और भाषान्तर भी। कठिन कठिन भाषाओं के विशेष-व्यवहृत शब्दों और वाक्यों की तालिकायें भी दी गई हैं। और, जगह जगह पर नक़शे देकर जो भाषा जहां बोली जाती है उस प्रदेश का पता बतलाया गया है।

जिस भाग में बँगला भाषा का इतिहास है उसे पढ़कर हम आश्चर्य से अवाक् हो गये। डाक्टर साहब ने इस भाषा पर जो लेख लिखे हैं वे उनकी अपार पण्डिताई और बहुज्ञता के आदर्श हैं। आप ने हर एक प्रान्त की बोलियों का विवरण, विस्तार-पूर्वक, दिया है।

किसी समय इस इतिहास पर दो एक लेख सरस्वती में प्रकाशित करने का विचार है। विशेष करके हिन्दी के विषय में।

* *
*

यूनीवरसिटी कालेज में फ़्रेज़र साहब तामील और तेलगू के अध्यापक हैं। उन्होंने हिन्दोस्तान के साहित्य का इतिहास लिख कर अभी कुछ दिन हुए प्रकाशित किया है। पुस्तक हिन्दोस्तानियों के देखने लायक़ है। दाम १० रुपये हैं। दत्त के इतिहास से भी मँहगा हुआ। काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के कुछ मेम्बर दत्त के इतिहास का अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित करना चाहते हैं। उसके प्रकाशित हो जाने पर, अंगरेज़ी से अनभिज्ञ लोगों को, उसमें बहुत सी नई नई बातें मिलेंगी। काशी में कोई बाबू गोपालदास हैं। सुनते हैं उन्होंने इस, इतने बड़े, इतिहास की हिन्दी बनाई है। आपकी लिखी हुई कोई पुस्तक आज तक देखने में नहीं आई; पर, जब सभा ने उनके अनुवाद को पसन्द किया तब वह ज़रूर अच्छा होगा।

* *
*

मदरास हाते में चित्तूर एक ज़िला है। वहां पर बी० गोपाल आइयर, बी० ए०, बी० एल०, एक नामी वकील हैं। वे प्राचीन भारतवर्ष का इतिहास लिख रहे हैं। उसका पहला भाग छप कर प्रकाशित भी हो गया। इस समय उसके आगे के लेख छप रहे हैं। कुछ प्रकाशित भी हो गये हैं। उनमें से एक लेख पुराणों पर है। उसमें लिखा है कि विष्णुपुराण में युधिष्ठिर के पीछे होनेवाले राजाओं की जो नामावली है वह प्रायः सही है। इस बात के प्रमाण में आपने अनेक लेख, ताम्रपत्र

और सिक्कों का हवाला दिया है। आपने अनेक प्रमाण देकर यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि विष्णुपुराण ईसा की पाँचवीं सदी के लगभग बना था। आपका यह भी मत है कि महाभारत का युद्ध ११९३ वर्ष ईसा के पहले हुआ था; अतएव युधिष्ठिर को हुए सिर्फ़ ३००० वर्ष के लगभग हुआ। बृहत्संहिता में वराहमिहर ने लिखा है—

आसन्मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥

इसमें जो अङ्क हैं उनका अर्थ २६×२५=६५० करके बुध के निर्वाण का समय, ५४३, आप उसमें जोड़ देते हैं। आपका मत है कि शक से यहां तात्पर्य्य गौतम बुध से है। आपके उद्घाटन किये हुए ये नये तत्व पुरविदों के काम के हैं।

* * *

कई महीने से, भारतमित्र में, उर्दू अख़बारों पर लगातार लेख निकलते रहे। उनका सिलसिला अक्टोबर में ख़तम हो गया। लेख बहुत अच्छे निकले। उनमें लेखक की अनुभव-शीलता, समालोचन-शक्ति और बहुदर्शिता का अच्छा परिचय मिलता है। अब वैसी ही एक लेखमालिका हिन्दी अख़बारों पर भी प्रकाशित करने का वचन दिया गया है। बड़ी अच्छी बात हो यदि उर्दू और हिन्दी अख़बारों पर निकले हुए ये सब लेख, पीछे से, पुस्तकाकार छाप दिये जायँ। नागरी-प्रचारिणी सभा ने हिन्दी के अख़बारों का एक संक्षिप्त इतिहास प्रकाशित किया है। इस बात को कई वर्ष हुए। भारतमित्र में प्रकाशित करने के लिए हिन्दी अख़बारों पर लेख लिखते समय, जो इस इतिहास की त्रुटियां (यदि कोई मिलें) दुरुस्त कर दी जायँ तो और भी उत्तम हो।

* * *

स्त्रीशिक्षा आज कल तरक़्क़ी पर है। इस प्रान्त में कान्यकुब्ज ब्राह्मण विद्या-विभव में बहुत ही पिछड़े हुए हैं; परन्तु उनमें भी पढ़ी लिखी स्त्रियां होने लगीं। शिक्षा एक बहुत व्यापक शब्द है; पढ़ने लिखने के सिवा, सभ्यता के और भी अनेक अङ्गों का उसमें समावेश होता है। गाना, बजाना, सूई और ब्रश को काम में लाना, आये गये की ख़ातिर तवाज़ो करना, बाहर घूम फिर आना और पहाड़ों की हवा खाना इत्यादि बातें, इस समय, स्त्रीशिक्षा के अङ्गों में शामिल हैं। इस तरफ़ की रमणी-रत्नों में दो बातों की अभी कमी है। एक तो अपने सजातियों और विशेष करके अपने वंशजों से काम पड़ने पर ये उनके साथ ज़रा कम उदारता दिखलाती हैं; अपने सभ्य और शिक्षित आचरणों से उनको अच्छी तरह कृतार्थ नहीं करतीं। दूसरे, अपनी अशिक्षित और अर्द्ध-शिक्षित देश-स्त्रियों के लिए कुछ लिखने की कृपा नहीं करतीं। सङ्कोच ही शायद इन दोनों बातों की जड़ है। बाहरवालों की अपेक्षा घरवालों से सङ्कोच ज़रा अधिक होता भी है। सम्भव है, कुछ दिनों में यह भी छूट जाय। प्रेमा नाम की एक स्त्री ने सब सङ्कोच छोड़ कर बर्फ़ के ऊपर एक रूपक रचा है। बर्फ़ को चिरकुमारिका बना कर उसके लिए आपही अपना पति ढूंढ लेने की उसने योजना कर दी है। यह लेख अंगरेज़ी में है और अंगरेज़ी "लेडीज़ मैगेज़ीन" नामक मासिक पुस्तक में छपा है। उसका मतलब हम "राजकुमारी-हिमाङ्गिनी" के नाम से अन्यत्र प्रकाशित करते हैं। आशा है, इस प्रान्त की सभ्य और शिक्षित स्त्रियां भी शीघ्र ही ऐसे ऐसे लेख लिखने लगेंगी!

लीयो तुलस्तुयी।

इस समय सारा पूर्व, पश्चिममय हो रहा है। जहां कहीं जो कुछ दृष्टि आता है, सब पश्चिम-पूरित है। ऐसी कठिन स्थिति में, पूर्वीय सिद्धान्त के आदर अथवा अनुसरण का, यदि एक भी, छोटे से छोटा, उदाहरण, पाश्चात्य जगत में मिल जाय, तो पूर्वीय नैराश्यमयी शुष्क जीवन-

सहरा में, शीतल हरियालीवत्, आशा का वही एक मात्र उत्तम बिन्दु है।

रूसी विद्वान्, कौंट * तुलस्तुयी का नाम और यश इस समय सारे भूमण्डल में व्याप्त हो रहा है। परन्तु केवल इस देश ही में नहीं, इङ्गलिस्तान में भी थोड़े ही मनुष्य ऐसे हैं, जिनको उनके उज्वल चरित्र से यथार्थ परिचय हो।

तुलस्तुयी का जन्म, सन् १८२६ के अगस्त मास की २८ तारीख़ को, रूस देश के टौला नामक प्रान्त में हुआ था। उनकी माता राजपुत्री थीं। इस लिये शिशुकाल में उनका लालन पालन बहुत अच्छी रीति से हुआ। दैवकोप से, पांच ही वर्ष की अवस्था में, माता पिता दोनों, इस लोक से चल बसे। आश्रयहीन, बालक तुलस्तुयी, नगर का निवास त्याग, ग्राम में पैतृक ज़मीदारी पर दिन काटने लगे। यहां उन्हें, बाल्यावस्थाही में, कई वर्ष निरन्तर, रूसी कृषिकारों के साथ रहने से, उनकी रहन सहन देखने का अवसर मिला। वहां के कृषिजीवी लोगों की जीवनदशा उन के कोमल हृदय पर अङ्कित हो गई। उनका स्वभाव और अभाव, गुण और दोष, वे भली भांति समझने लगे। तुलस्तुयी के भावी उद्योग से प्रतीत होता है कि उसी काल में उन्होंने, मन में सङ्कल्प किया था कि मैं बड़ा होकर रूसी कृषकसमाज की हीनता निवारण के लिए प्रयत्न करूंगा। †

उनके जीवनविषयक विचार सदा अब के से नहीं थे। परन्तु उनकी बुद्धि बाल्यावस्था में भी बड़ी प्रखर थी। वे सोलह वर्ष के अल्प वय में, प्रवेशिकोत्तीर्ण होकर, कालेज में अनेक वर्ष तक अनेक शास्त्रों का पठन तथा अवलोकन करते रहे। पचीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने रूसी सेना में पद ग्रहण किया। वीरोचित कार्यों में भी उन्होंने ख्याति लाभ की। टर्की आक्रमण में, जो इस देश में रूस रूम की लड़ाई के नाम से प्रसिद्ध है, वे उपस्थित थे। एक दूसरे युद्ध का, जिस में वे उपस्थित थे, उन्होंने उत्तम वर्णन लिखा है। परन्तु उनके इस समय के जीवन की प्रधान घटना एक और ही है। सेना में रहकर, विशेषतः विदेश में, पर्वत लांघना, नदी पार करना, और सघन वन भेदना, प्रायः प्रति दिन का कार्य्य है। काकेशश पर्वत के विराट, रम्य, प्राकृतिक दृश्यों को देख कर साहित्यप्रेमी तुलस्तुयी का मन मुग्ध हो गया। उन्होंके मनन में, बहुधा, उनकी सुध बुध बिसर जाती थी। तिस पर वहां के निवासियों में उक्त पर्वतविषयक अनेक कौतूहलोत्पादक मौखिक वार्त्तायें प्रचलित हैं। तुलस्तुयी ने ऐसे अच्छे अवसर को वृथा नहीं जाने दिया; उनके रचे हुए कई अति आदृत उपन्यासों के आधार की मूल रेखाओं का चित्र यहीं से प्राप्त हुआ था।

परन्तु सैनिक वृत्ति से उनका उदार मन घृणा करने लगा और वे शीघ्र ही अपना पद परित्याग कर साहित्य-सेवनार्थ, रूस की राजधानी सेन्ट-पीटर्सबर्ग में जा बसे। उन्होंने देशाटन भी इसी समय किया। सब यौरोपीय देशों में भ्रमण करते करते, वे इङ्गलिस्तान पहुंचे, जहां एक रात्रि, कामन्स सभा में बैठ कर उन्होंने सभ्यों के, राजनैतिक वादानुवाद का दृश्य देखा। वे लिखते हैं—"प्रधान अमात्य लार्ड पामर्सटन् नेत्रों तक टोपी झुकाये, गम्भीरभाव से बैठे सुन रहे थे; सामने से प्रतिद्वन्दी दल का एक सभ्य पदारूढ़ मन्त्रिमण्डल पर आक्षेप के गोले बरसा रहा था। जब वह कह चुका, लार्ड पामर्सटन् उठे और बड़े धैर्य्यपूर्वक, एक एक करके, उसकी सब युक्तियों का उन्होंने खण्डन कर दिया"। इस पर्य्यटन में योरप के अनेक विद्वान्

---

* रूस देश में "कौंट" एक श्रेणी के अमीरों की उपाधि है।

† "धन वैभव जहं बढत, प्रजा छीजत जहं जाई।
नहिं मंगल तेहि देश, अमङ्गल नित नियराई॥
कुंवर और उमराव, बनैं बिगरैं कछु नाहीं।
फूंक मांहिं वे बनत, फूंक ही सों मिट जांहीं॥
पै दृढ़ कृषक समाज, देश को सांचो गौरव।
नाश भये इक बार, फेर उपजन नहिं सम्भव॥
—ऊजड़-गांव।

तथा प्रसिद्ध पुरुषों से उनका परिचय हो गया, तथा व्यवहारिक ज्ञान भी उनका बहुत बढ़ गया।

तुलस्तुयी ने, "बाल्य, कुमार, और युवा अवस्था" नामक प्रथम उपन्यास छब्बीस वर्ष की अवस्था में लिखा था। उसके उचित आदर से रचयिता का उत्साह द्विगुणित हो गया। पश्चात् उन्होंने कई और उपन्यास लिखे, जिनकी रचना से, एक रूस देश ही में नहीं, सारे साहित्यसेवी संसार में, उनका नाम घोषित हो गया। साथ ही अर्थ लाभ भी कम नहीं हुआ। उनके सर्वोत्कृष्ट उपन्यास "विग्रह और शान्ति" की रचना में पूरे छः वर्ष का समय लगा था। इसी ग्रन्थ के रचनाकाल में, उन के सिद्धान्तों में गम्भीर परिवर्त्तन सङ्घटित हुआ था। उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली कि मैं अब से उपन्यास नहीं लिखूंगा, काव्य नहीं रचूंगा, और न उनके विक्रय द्वारा आये हुए धन को ग्रहण करूंगा। जो सिद्धान्त, अनेक वर्ष तक, गम्भीर गवेषणा द्वारा मैंने स्वयं स्वीकार किये हैं, उन्हींके विस्तार तथा प्रचार में शेष समय व्यतीत करूंगा। अब वे अपनी पूर्व्व-प्रणीत ग्रन्थावली का कर्तृत्व नहीं स्वीकार करते, न उसकी बिक्री का धन लेते हैं। उन्होंने अपने पिछले रचे हुए सब ग्रन्थ प्रकाशकों को बिना मूल्य दिये हैं और उन पर अपना कोई स्वत्व रक्षित नहीं रक्खा है। प्रकाशकों ने, इन पुस्तकों की सस्ती सस्ती आवृत्तियां निकाल कर ऐसे सुलभ मूल्य पर वितरण की हैं, कि ग्राम ग्राम और गृह गृह में उनका प्रचार है।

बड़े होकर तुलस्तुयी अपने पूर्व परिचित किसानों को नहीं भूले। उन्होंने यथासाध्य उनके उद्धार का उपाय किया। क्रमशः दृढ़ उद्योग से रूसी कृषिकार उनके अभिप्राय को समझने और उनकी, अपने साथ, आन्तरिक सहानुभूति पर विश्वास करने लगे हैं। कौंट को भी उनके भावी मङ्गल की पूरी आशा है। रूस देश का परिचय रखनेवाले अनेक दूरदर्शी लोगों का मत है कि रूसी कृषक-समाज में तुलस्तुयी के बोये बीज समयानुसार 'गुणमय फल' प्रदान करेंगे; परन्तु ये फल कब और किस प्रकार उत्पन्न होंगे, सो अभी से कोई नहीं कह सकता।

तुलस्तुयी एक दिन एक बहुमूल्य पैतृक ज़मीदारी के अधिकारी थे और उनके ग्रन्थों की बिक्री से प्रचुर द्रव्य आता था। इसलिये, यदि वे चाहते तो आज, लक्षों नहीं करोड़ों के धनी होते। इसमें अणुमात्र भी अत्युक्ति अथवा सन्देह नहीं है। परन्तु कालक्रम से उनकी यह असाधारण धारणा हो गयी कि खीष्ट के सच्चे अनुगामी को धन सम्पत्ति का ग्रहण अथवा सञ्चय पाप का मूल है। इसीलिये जिस तुलस्तुयी की ग्रन्थावली धनराशि का मानो दूसरा नाम था; जिस तुलस्तुयी का नाम एक दिन वीर योद्धाओं की गिनती में था; और जो तुलस्तुयी मास्को नगर के सामाजिक समारोहों में मित्र-मण्डली के बीच उत्तरोत्तर बढ़ती हुई प्रतिभा से शोभित होता था; वही तुलस्तुयी, वही महान व्यक्ति, आज, स्वेच्छा से, दीनों का दीन, रङ्कों का रङ्क है। जगत-प्रसिद्ध बात है कि तुलस्तुयी अपने हाथ से ईन्धन बटोरते हैं, हाथ से भोजन बनाते हैं, और अति सामान्य किसान के भेष में, हाथ ही से जोत बोकर, निर्वाहार्थ, अन्न उत्पन्न करते हैं; अन्तःकरण से, सब सुखों को ठोकर मारकर, नितान्त श्रमशील जीवन बिता रहे हैं। ऐसे विचार, ऐसी रहन, तथा आत्म-सुख-सामग्री का ऐसा तिरस्कार, मुख्यतः पश्चिमी देशों में अत्यन्त दुष्प्राप्य है।

उन्होंने, सन् १८६२ में, मास्को नगर के एक डाकृर की कन्या से विवाह किया, जिससे उनको सात सन्तान हैं। श्रीमती तुलस्तुयी, अनेक कलाओं में प्रवीण, चतुर, सुगृहिणी हैं; परन्तु स्वामी के विश्वास तथा निश्चय के विषय में वे उनसे सहमत नहीं हैं; केवल इतना ही नहीं, वे पति के सिद्धान्तों के सर्वथा विरुद्ध हैं। पुत्रों को भी पिता के सिद्धान्त ग्राह्य नहीं हैं। सारे

परिवार में केवल एक कन्या ही पिता की मतावलम्बिनी है।

तुलस्तुयी अपना जूता अपने हाथ से बना लेते हैं। और यदि किसी दीन पड़ोसी को जूता मोल लेने का सामर्थ्य न हो, तो उसके लिये भी वे बना देते हैं। वे सूचीकारी जानते हैं और अपने पहनने योग्य वस्त्र भी आपही बना लेते हैं। परन्तु श्रीमती का हठ है कि यह कार्य्य आपका हम करेंगी; आपको नहीं करने देंगी। परन्तु बढ़िया और 'फ़ैशन' के अनुकूल वस्त्र धारण करने के विषय में वे श्रीमती का आग्रह भी नहीं मानते। उन्हें सब प्रकार की चमक दमक से घृणा है। कभी कभी उनका भेष बहुत ही साधारण–भद्दा–होता है।

एक रात को नगर में उन्हींके रचित एक नाटक का अभिनय था, जिसमें स्वयं वे भी निमन्त्रित थे। निमन्त्रण अस्वीकार करना शिष्टता तथा उनके सिद्धान्त के प्रतिकूल है। इसलिए वे गये तो सही, परन्तु गये अपने नियमित–किसानी–वेष में। कतिपय चुने हुए भद्र पुरुषों ही का आवाहन था और द्वारपाल को स्पष्ट आज्ञा थी कि कोई अन्य मनुष्य भीतर न आने पावै। अतः, ज्यों ही, फटे पुराने से वस्त्र लपेटे, एक कोरा कङ्काल रङ्गालय की ड्योढ़ी पर आकर खड़ा हुआ, द्वारपाल घुड़क कर बोला, कि यदि तू अपना भला चाहै, तो शीघ्र यहां से दूर जा खड़ा हो। जब वह वहां से न डिगा, द्वारपाल ने उसे बलपूर्वक उठा कर सीढ़ियों पर पटक दिया। खड़े होकर आप बोले मेरा नाम तुलस्तुयी है। बेचारा द्वारपाल सुन कर आश्चर्य्य से मूक रह गया। जब बोल सका, हाथ जोड़कर वह क्षमा प्रार्थना करने लगा। परन्तु तुलस्तुयी से क्षमा माँगने की किसीको आवश्यकता नहीं है। वे आपही क्षमा की मूर्ति हैं। वे, इस साधु आज्ञा के कि "जो तेरे एक गाल पर घूंसा लगावै, तू दूसरा भी उसके आगे कर दे," यथार्थ प्रतिपालक हैं। वे अपकार के बदले उपकार करते हैं और शत्रु के भी मित्र हैं।

नाटक में भी मारपीट की ऐसी ही एक घटना का उल्लेख था, परन्तु पात्रों ने उसे खेल कर नहीं दिखाया। खेल के अन्त में दर्शकों के अनुरोध से, तुलस्तुयी ने, अभिनय की आलोचना-विषयक एक छोटी सी वक्तृता दी, जिसमें उन्होंने उक्त घटना के अभिनयोल्लङ्घन पर खेद प्रकाश करके कहा कि "वैसी घटना के मर्म्म को मैं जानता हूं, क्योंकि मैंने अभी नाट्यशाला की सीढ़ियों पर पटक खाई है।"*

चित्तवृत्ति का परिवर्त्तन होते ही तुलस्तुयी ने अपनी सारी सम्पत्ति अपनी श्रीमती के हवाले कर दी। छः पुत्र तथा कन्याओं को साढ़े सात सात हज़ार मुद्रा की वार्षिक आय पृथक् निकाल दी। एक कन्या, पिता की भांति, कुछ भी लेना वा रखना नहीं चाहती। उनका परिवार धनी तथा कई विस्तृत ज़मीदारियों का अधिकारी है सही; परन्तु तुलस्तुयी, जीवनोपयोगी नितान्त आवश्यकीय वस्तुओं के अतिरिक्त कोई मूल्यवान पदार्थ अपने पास नहीं रखते। वे पुस्तक कभी मोल नहीं लेते; वे उनको राजकीय पुस्तकालय से मिल जाती हैं। सैकड़ों पुस्तक और सहस्रों पत्र नित्यप्रति, पृथ्वी के सब देशों से, उनके पास डांक द्वारा आते हैं। सबका उत्तर देना कठिन है; परन्तु वे एक भी पत्र का उत्तर दिये बिना नहीं रहते; उन्हें केवल इतना निश्चय हो जाना चाहिये कि उत्तरप्रार्थी सच्चा जिज्ञासु है, और उत्तरप्रदान से उसका हित साधन होगा।

कौंट बड़ी ही प्रबल प्रकृति के मनुष्य हैं। वे घण्टों शतरञ्ज खेलते हैं। थोड़े दिन की बात है,

* "कबहुंक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा ते संत स्वभाव गहौंगो॥
यथा लाभ सन्तोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो।
पर हित निरत निरन्तर मन बच कर्म्म नेम निबहौंगो॥
परुष बचन अति दुसह श्रवण सुन तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान सम मन शीतल पर गुण अवगुण न कहौंगो॥
परिहरि देहजनित चिन्ता दुख सुख सम बुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि कै अविचल भक्ति लहौंगो॥"
—विनयपत्रिका।

जापानी युद्ध-गीत ।

[जनरल फूकू शिमा कृत और "जापान टाइम्स" में प्रकाशित, Japanese War-Song का अनुवाद]

[१]

Hail the Rising Sun, the emblem
Of our world-renowned Japan !
In the morning rays her banner
Gleans across her Kingdom's span.

जय उदित भानु ! हैं आप हमारी
जग प्रसिद्ध जापान-ध्वजा ।
प्रातकिरण में जिसका झण्डा
सर्व राज्य में रहै सजा ॥

[२]

Great her people ! Love of Justice
And of fellow-men inbred,
With a brave and loyal service
To her great imperial Head.

वीरवर्ग ! हे न्याय-निरत नर
हे हे प्राणि-मात्र-अनुरक्त !
विपुल-वीरता-भक्ति-भाव-युत
निज स्वामी के सच्चे भक्त !

[३]

Lo our foe, a land that knows not
Truth and righteousness by name ;
Lies and treachery its usage,
Plunder and rapine the same.

देखो अपने अरि को, उसमें
सत्य धर्म का नाम न लेश ।
झूठा है, है छली, लुटेरा,
हैं उसमें दुर्गुण निःशेष ॥

[४]

Guiltless babes and maidens murdered,
Burning homes that rise no more
Witness to the Slav whose practice
Gods and man alike abhor.

निरपराध बहु बाला-बालक
मरते, घर जल जाते हैं ।
इसके नीच कर्म पर सुर भी,
नर भी, घृणा दिखाते हैं ॥

[५]

Behold the land, a storm-swept desert ;
Peoples mixed, and lawless hordes
Cowards, at Pekin they faltered,
In the face of Chinese swords.

देखो, मही मरुस्थल कर दी,
जातिहीन अन्यायी है ।
देख खड्ग पीकिन में इसने
कायरता दिखलाई है ॥

[६]

Cossack, name once famed in history,
Now is but an ancient lay.
Melting snow in morning sun-light,
Russian armies fade away.

था कज़ाक नाम इतिहासी,
पर अब है वह केवल गीत ।
पिघलै प्रात-सूर्य से ज्यों हिम
त्यों अब रूसी दल भय-भीत ॥

[७]

Up and forward steeds and warriors !
March ! Already spring is here,
Righteous war admits no foe-man ;
Joy is ours with naught to fear.

उठो ! वीर-वर, अश्वारोही,
चलो ! समय आया अनुकूल ।
धर्मयुद्ध में जीत हमारी
ही होगी; अरि-उर निर्मूल ॥

[८]

Break the ramparts of Port Arthur,
Tear the walls of Harbin down!
On the heights of Ural mountains
Float the banner of the Sun!

दौड़ो; पोर्ट आरथर तोड़ो,
फोड़ो हार्बिन; करो प्रवेश!
यूरल पर्वत पर दिनेश की
ध्वजा उड़ावो हे वीरेश!

[९]

Drive the Slav unto the forests;
Let him hide within their shade.
Ancient Moscow be his refuge,
There his bloody hand be stayed.

वन में इन्हें भगाओ झट पट;
छिपें वहां वृक्षों के बीच।
लेवें शरण मास्को की भग,
ठहरें वहीं नृपशु ये नीच॥

[१०]

Then unto our Sovereign's glory,
Praises sound and never cease.
While our hearts unite, rejoicing
In a great and world-wide peace.

यश फैलावो निज राजा का;
उसकी स्तुति गावो सुविशेष।
पावो परमानन्द हृदय में
छावो जग में शान्ति अशेष॥

पुरोहित लक्ष्मीनारायण।

शरद-वर्णन।

[१]

सोहैं सरोज सित सुन्दर सिन्धु भाये
नीलारबिन्द बन धैां हिम बिन्दु छाये।
हीरे बिशाल बर नीलम शैल माहीं,
बूटे किधौं प्रकृति-बाम-दुकूल माहीं॥

[२]

आवै किधौं तमहि जीतन रैनराज
मैदान माँहिँ दल तासु रह्यो बिराज।
की धैां बिरिंचि लिखि कै महिमार्थ सार
श्रीब्रह्म को बिरद पत्र रच्यो अपार॥

[३]

कै सेवती सुमन नन्दन बाग वारे
जो सूंघि सूंघि मन में अमरीन डारे।
माया तिया कि पिय पूरन ब्रह्म काजै
पर्य्यङ्क पै पुहुप पुञ्ज अपार साजै॥

[४]

कै रैन चन्द सुतवृन्द अनन्त प्यारे
आनन्द धाम बिहरैं छबिवन्त बारे।
पूजै कि भक्त बर अम्बर श्रीहरी को
साजे सुदिव्य बहु दीपक आरती को॥

राय देवीप्रसाद।

शिक्षाशतक।

[भाग ४, संख्या ११ के आगे]

[२७]

बाक़ी रहे घड़ी दो रात।
उठ बैठो तब जान प्रभात॥
भक्ति सहित लो हरि का नाम।
सोचो अर्थ धर्म का काम॥

[२८]

दैनिक चर्या के अनुसार।
करो काज, तज आलस भार॥
वृथा समय को करो न नष्ट।
व्यर्थ काज कर लहो न कष्ट॥

[२९]

जो सुकर्म रत हों विद्वान।
नित्य नियम पर रखते ध्यान॥
उनको देना आदर दान।
अश्वमेध के यज्ञ समान॥

[३०]

विद्या, सम्पति, धर्माचार।
यही तीन सब सुख के सार॥
इनका संग्रह करो विचार।
सुख भोगो फिर सभी प्रकार॥

[३१]

जो नर करके बहु उपचार।
दुखियों का करते उपकार॥
शुद्ध हृदय रखते सब ठौर।
वे होते सब के सिरमौर॥

[३२]

जिसने दिया दीन को दान।
प्रभुता पाय न किया अभिमान॥
लिया न सिर पर अपयश भार।
वेही पुरुष रत्न अवतार॥

[३३]

दया धर्म का मूल, विचार।
जो सब का करते उपकार॥
जिनसे दुःख न पाता कोइ।
जानो मनुजरत्न है सोइ॥

[३४]

जो कुकर्म करके निर्बुद्धि,
खो देते निज अन्तःशुद्धि,
कर्तव्याकर्तव्य विवेक,—
उन्हें न मन में आता एक॥

[३५]

कभी शयन दुर्व्यसन-विलास।
कभी कलह औ सत् उपहास॥
यों करते धरते दिन रात।
मूर्ख बिताते सायं प्रात॥

[३६]

अपनी गुरुता का अभिमान।
रखना रौरव नरक समान॥
इससे अहंकार को त्याग।
सब पर करो उचित अनुराग॥

[३७]

विनय बड़ाई का है मूल।
इसे कभी मत जाओ भूल॥
विनय बिना गुण सभी मलीन।
जैसे व्यञ्जन लवण-विहीन॥

[३८]

गुण पा करके सब का मान।
करते हैं सद्व्यक्ति महान॥
विनय, भाव युत तज अभिमान।
सब से रखते प्रेम समान॥

[३९]

जिसे समझते आप अयुक्त।
क्यों उसमें फिर होते लिप्त?
साधन करो सभी धर्मार्थ।
तभी तुम्हारा है पुरुषार्थ॥

[४०]

नियम भङ्ग कर बारंबार।
करना प्रायश्चित्त विचार॥
ऐसा वृथा क्रिया अनुष्ठान।
समझो हस्तिस्नान समान॥

[४१]

बोलो कभी न झूठी बात।
करो न जीवों का अभिघात॥
निज कृत को तुम सोचो नित्य।
जो होना चाहो कृतकृत्य॥

[४२]

बोलो सबसे ऐसे बैन।
जो हों मधुर सत्य सुख दैन ॥
असम्बद्ध अप्रिय आलाप।
श्रोताओं को देता ताप ॥

[४३]

जो गुण तज, दोषों का खोज।
करते संग्रह रोज़ बरोज़ ॥
उनको जानो जोंक समान।
पीते रुधिर छोड़ पयपान ॥

[४४]

जो कह इधर उधर की बात।
ठगते ही फिरते दिन रात ॥
उन्हें पूज्य सुर गुरु सम देख।
किसे न होता दुःख विशेष ॥

[४५]

जो वञ्चक को अपना जान।
उससे रखते सुख का ज्ञान ॥
वे धोखा खाकर दिन एक।
पछतावेंगे नष्ट-विवेक ॥

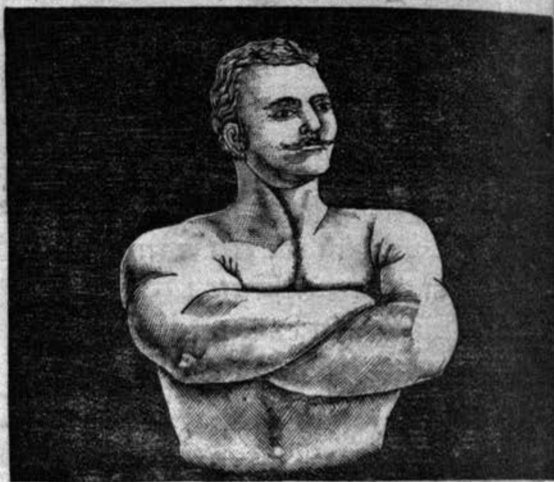
[४६]

जिनका चित्त, वचन, आचार।
मेल न खाता किसी प्रकार ॥
जानो उन्हें कपट का दास।
करो नहीं उनका विश्वास ॥

[और आगे।

जनार्दन झा।

प्रसिद्ध पहलवान सैंडो।



सैंडो साहब एक प्रसिद्ध पहलवान हैं। वे जर्मनी के रहनेवाले हैं। उनका जन्म १८६८ ई० में हुआ था। लड़कपन में वे बहुत निर्बल थे; उनका शरीर भी दुबला पतला था कुछ दिनों में उनको अपनी निर्बलता पर खेद हुआ और कसरत करके अपने शरीर को वे दृढ़ करने लगे। कई वर्ष के परिश्रम से उनकी इच्छा पूर्ण हुई इस समय वे इतने बलवान हैं कि उनको बराबरी करनेवाला कोई बिरला ही होगा। उनके शरीर की बनावट, उनकी छाती की चौड़ाई और उनकी भुजाओं के घेर को देखकर लोग अचरज करते हैं। तौल में सैंडो साहब तीन मन हैं; और उँचाई में ५ फुट १० इञ्च। उनकी गरदन का घेरा १८ इञ्च और फैली हुई छाती का ६२ इञ्च है।

सैंडो साहब बड़े बलवान हैं। तार के मोटे मोटे रस्सों को पीठ और छाती के चारों ओर बांध कर, छाती को फैला कर, वे उन रस्सों को सहज में तोड़ डालते हैं। एक एक हाथ से एक एक घोड़े को वे अपने सिर तक उठा लेते हैं; घूंसे से बड़े बड़े पत्थरों को चूर चूर कर देते हैं; अपनी भुजाओं पर मारे

[उन्हों]ने पत्थरों के दो टुकड़े कर डालते हैं; चालीस चालीस मन को लोहे की चादरें पीठ पर उठालेते हैं। एक बार अमेरिका में उन्होंने एक भयानक सिंह के साथ तीन बार कुश्ती लड़ी और तीनों बार सिंह के उन्होंने पछाड़ दिया। तीसरी बार तो सिंह उनसे इतना डर गया कि वह उनके सामने कुत्ते के समान खड़ा रह गया; कान तक उसने न हिलाये।

सैंडो साहब ने लण्डन में एक अखाड़ा बनाया है। वहां वे लोगों के कसरत करना सिखलाते हैं और उनके शरीर के सुडौल और बलवान बनाने की शिक्षा देते हैं। उन्होंने इस विषय की किताबें भी लिखी हैं। उनके "डम्बेल" मशहूर हैं।

यही सैंडो साहब हिन्दोस्तान आते हैं। इस संख्या के निकलते निकलते शायद आ भी जायं। उनके साथ में और भी कई पहलवान हैं। ये पहले पहल अपनी कसरत बम्बई में दिखलावेंगे और व्यायाम-सम्बन्धी व्याख्यान भी देंगे। फिर आप यहां के और और शहरों में भी, इसी निमित्त, घूमेंगे।

सैंडो साहब के उदाहरण से यह बात सिद्ध होती है कि दुबले पतले और निर्बल मनुष्य भी शरीर-सम्बन्धी नियमों के अनुसार रहने और अच्छी प्रकार कसरत करने से बलवान हो सकते हैं। जिनके शरीर में बल होता है वे सदैव निरोग रहते हैं। बलवान और निरोग होना मनुष्य के लिये बहुत ही हितकर है। इस लिए शरीर के बली बनाने की ओर अवश्य ध्यान रखना चाहिए।

पैाधों का साँस लेना।

जानवरों के शरीर के रक्त-प्रवाह कीभांति वृक्ष-शरीर में भी रस प्रवाह होता है। ईश्वर ने पशु-शरीर और वृक्ष-शरीर की समानता केवल यहीं तक नहीं रक्खी है; वरन उसे और भी आगे पहुँचाया है। जानवरों की भांति वृक्ष भी साँस लेते हैं।

बड़े से बड़े जानवर—हाथी, गैण्डा, शुतरमुर्ग और मनुष्य भी—केवल एक ही नली द्वारा साँस लेते हैं; और साँस में आई हुई वायु को शुद्ध करने और शरीर के उपयुक्त भागों में पहुँचाने के लिए उनके पास केवल एकही इन्द्रिय (फेफड़ा) होती है। परन्तु वृक्षों के पास इस काम के लिए पशुओं से संख्या में अधिक और बढ़िया इन्द्रियां हैं। वायु को रासायनिक प्रक्रिया (Chemical action) के लिए उनके हज़ारों—हज़ारों ही क्यों लाखों-अति सूक्ष्म रासायनिक प्रक्रियालय (Laboratories) होते हैं।

वास्तव में पत्तेही वृक्षों के फेफड़े हैं। सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र द्वारा पत्तों के ऊपर बहुत से उभड़े हुए छेद देख पड़ते हैं। इनके किनारे ऊपर को उभड़े हुए होते हैं और बनावट में ये छिद्र बटन के छेदों के से होते हैं। इन्हें Stomata या मुँह कहते हैं। इन्हीं के द्वारा वायु श्वासगृह (Respiratory chambers) में प्रवेश करती है। ये छिद्र वृक्षों के नासिकाछिद्र हैं। वृक्षों के श्वासगृह, जिनमें कि वायु प्रवेश करती है, पत्ते की मुटाई में होने के कारण अति सूक्ष्म और अदृश्य होते हैं। ये अदृश्य गृह पत्ते के घटकमय तन्तु (Cellular tissue) में खुदे होते हैं, और उनकी छतें घटक (Cell) के ऊपर घटक रखके बने हुए बड़े बारीक स्तम्भों के सहारे खड़ी रहती हैं। इसी अद्भुत पेचीले मार्ग से वायु को वृक्ष-शरीर में प्रवेश करना होता है। पानी के कई पैाधों में, जोकि नदियों के तल में उत्पन्न होते हैं, उनकी नासिका और फेफड़ों की बनावट ऐसी नहीं होती। ऊपरी वायु-मण्डल से सम्बन्ध न रखने के कारण वायु के आने जाने के ये छिद्र, इन पानी के पैाधों के किस काम के? इसलिए ईश्वर ने ऐसे पैाधों के साँस लेने के लिए एक दूसरा ही उपाय निकाला है। मछली की साँस लेनेवाली इन्द्रिय को Branchiæ कहते

हैं। इसके द्वारा वह पानी में मिली हुई वायु के कणों को पृथक करके इतनी वायु इकट्ठा करलेती है, जितनी कि उसके साँस लेने के लिए काफ़ी होती है। बस ठीक इसी प्रकार की इन्द्रिय ईश्वर ने ऐसे पैाधों को साँस लेने के लिए दी है। एक प्रकार के पैाधों (Fluviales) में, जो यूरोप देश के ताल तलैयों में बहुतायत से पाये जाते हैं, साँस लेने के लिए ऐसाही बन्दोबस्त है। इनके पत्तों में ऊपरी खाल या झिल्ली नहीं होती। वे मछलियों की एक प्रकार की श्वासेन्द्रिय (Branchiæ) से मालूम होते हैं; और ऐसे बने होते हैं कि जल से मिली हुई वायु के कणों को वे इकट्ठा कर सकें।

यदि वृक्षों के पत्तों के ऊपरवाले छिद्र बन्द कर दिये जांय तो वे थोड़ी ही देर में सूख जांय। एक छोटे से पैाधे की सारी पत्तियों में एक एक करके ऊपर नीचे गोंद लगा दीजिये, बस पैाधा थोड़ी देर में, सूख जायगा। अर्थात् साँस रुकने से दम घुट कर मर जायगा।

जानवरों का साँस लेना वायुमण्डल की हवा के लिए हानिकर है। जानवर बराबर हवा को ख़राब किया करते हैं। प्राण को रखनेवाली आक्सीजन नामक गैस को वे सांस से खींच लेते हैं और अति विषैली, कारबोनिक एसिड गैस को निःश्वास द्वारा वायु में मिला देते हैं। हिसाब लगाने से ज्ञात हुआ है कि एक खर्व और साठ अर्ब क्यूबिक गज़ आक्सीजन प्रति वर्ष केवल मनुष्यों ही में खप जाता है; दूसरे पशुओं में तो इससे चैागुना खपता है! यह तो हुआ एक अति लाभदायक गैस हज़म करके वायुमण्डल को हानि पहुँचाना। अब देखिये हम लोग वायुमण्डल में कितना विष मिला देते हैं। प्रति मनुष्य, प्रति दिन, लग भग आठ आउन्स कारबोनिक गैस निःश्वास से बाहर निकालता है। आठ आउन्स कारबोनिक एसिड गैस में से कोई सवा दो आउन्स जल उठने लायक़ (Combustible) स्वच्छ कारबन (कोयला) निकलता है। इस हिसाब से केवल भारतवर्ष के उन्तीस करोड़ मनुष्य, प्रति वर्ष, ७,२९०,६८९ टन कारबन वायुमण्डल में मिलाते हैं। भारत के अन्य पशु न जाने और कितना कारबन वायुमण्डल में मिलाते होंगे। इस भयावह परिवर्तन का ज्ञान किसको नहीं चैांका देगा! मालूम होता है कि मानो यह परिवर्तन प्राणिजीवन का एकदम नाश कर देगा। परन्तु ईश्वर ने, इसके साथ ही साथ, इस हानि के दूर करने का उपाय भी कर रक्खा है। भूमण्डल पर बिछी हुई यह हरी हरी चादर पशुओं की इस हानिकर काररवाई के फल को रोकती है। हर एक पैाधा वायु शुद्ध करने की एक एक कल है।

पैाधों को अपनी ख़ुराक के लिए और अपने अङ्गों को दृढ़ करने के लिए बहुत सी कारबन की आवश्यकता होती है। इस लिए वे वायु में जितनी कारबोनिक गैस मिलती है, खींच लेते हैं और उसमें की कारबन अपने तन्तुजाल में दृढ़ता से रख छोड़ते हैं। परन्तु आक्सीजन को वे निःश्वास द्वारा बाहर निकाल देते हैं। इस प्रकार पैाधे, सांस लेने से, वायुमण्डल को दो लाभ पहुँचाते हैं। अर्थात् एक तो प्राणदायक गैस (आक्सीजन) को उगल कर वायुमण्डल को लाभदायक बनाते हैं और दूसरे विषैली गैस (कारबन) को खींच कर वायुमण्डल को विषरहित करते हैं। एक तत्ववेत्ता का मत है कि पैाधे उतना ही आक्सीजन वायुमण्डल में मिलाते हैं जितना कि जानवर खींच लेते हैं।



पैाधे कितना आक्सीजन वायुमण्डल में मिलाते हैं इसका नापना कोई मुशकिल बात नहीं है।

इस के लिए केवल एक कांच का घण्टीनुमा ढकन चाहिए, और एक कांच का प्याला। प्याले में थोड़ा सा पानी भर दो। उसमें एक पौधा रखदो। ऊपर से शीशे का ढकन ढांक दो। फिर जैसे ही उसपर रोशनी पड़ेगी पौधे की कुल पत्तियों में से गैस के बबूले निकलने लगेंगे। यह बबूले बराबर ढकन की चोटी तक उठते रहेंगे; और चोटी पर पहुँच कर इकट्ठे हो जायँगे। अब यदि हम चोटी पर जमी हुई वस्तु को उसके अवयव विभिन्न कर के (Analyze) देखें तो पावेंगे कि प्रज्वलित वस्तु को वह और भी प्रज्वलित कर देगी। और यह आक्सीजन का गुण है। अतः सिद्ध हुआ कि यह वस्तु वास्तव में अपने सब गुणों सहित आक्सोजन है।

परन्तु यह ध्यान देने योग्य बात है कि केवल प्रकाश ही के प्रभाव से पौधे यह जगदुपकारी कार्य कर सकते हैं। यदि वह तारा जिससे कि प्रकाश निकलता है बुझा दिया जाय तो पौधों का यह कार्य एक क्षण में बन्द हो जाय, और यह भूगोल अन्धकारलिप्त हो कर शीघ्र ही अपनी सब्ज़ पोशाक से हाथ धो बैठे।

परन्तु रात के समय पौधे जानवरों की भांति सांस लेते हैं। अर्थात् आक्सीजन को खींचते और कारबोनिक-एसिड-गैस को बाहर निकालते हैं। उनके सारे छिद्रों में से इतना कारबन बाहर निकलता है, कि यदि भूल से एक कमरे में कुछ पौधे रखकर हम भी वहीं सो जायं तो वायु इतनी ख़राब हो जाय, कि मानों उतने पौधे नहीं, वरन उतने मनुष्य उस कमरे में सोये थे।

परन्तु, यह रात का सांस लेना दिन में किये हुए लाभ को घटा नहीं सकता। दिन को प्रकाश पानेवाले पौधे उससे कहीं अधिक आक्सीजन वायुमण्डल में मिलाते हैं जितना कि वे रात को अन्धकार में स्वयं पीते हैं। और रात में उनसे निकला हुआ कारबन दिन में खींचे हुए कारबन से कहीं कम है।

अस्तु; पौधों को वायुमण्डल के शुद्ध रखने का भार सौंपा गया है। इससे यह प्रकट हो है कि यदि संसार के समस्त पौधे नष्ट हो जायँ तो एक परिमित समय के अन्दर संसार के प्राणिमात्र का नाश हो जाय। परन्तु वानस्पतिक वर्ग के नष्ट होने पर जो परिमित समय प्राणिमात्र के लिए दरकार है, वह बहुत बड़ा है। अर्थात् समस्त वृक्षादिकों के नष्ट हो जाने पर वायुमण्डल के आक्सीजन को ख़र्च करने में जानवरों (मनुष्यों और पशुओं) को कम से कम ८ लाख वर्ष चाहिए; तिसपर भी वनस्पतिवर्ग के नाश हो जाने के दिन से दश हज़ार वर्ष तक वायुमण्डल में धीरे धीरे होनेवाली आक्सीजन की कमी का पता अच्छे से अच्छे औज़ार से भी नहीं लग सकता।

बड़ी खोज के उपरान्त अध्यापक लिबिग (Liebig) ने सिद्ध कर दिया है कि वायुमण्डल की रासायनिक प्रकृति में दो हज़ार वर्ष से कुछ अन्तर नहीं उत्पन्न हुआ है। रोमदेश की स्त्रियां अपने प्यारे की मृत्यु पर जो आंसू बहातीं थीं, उन को, एक कांच की शीशी में भर कर, शीशी का मुँह कांच लगा कर वे बन्द कर देती थीं; और फिर वे शीशियां मृतक के साथ समाधिस्थ कर दीं जाती थीं। ऐसी शीशियों के अन्दर का आकाश जब विभिन्न करके देखा गया तो मालूम हुआ कि उसकी वायु वैसी ही है जैसी कि आज हम वायुमण्डल में पाते हैं।

एक परमित समय में पौधे कितना आक्सीजन बाहर निकालते हैं इसका भी पता एक तत्ववेत्ता ने लगाया है। उसने ज्ञात किया है कि नदीतल पर फैले हुए कुमुदनी के चौड़े चौड़े पत्ते बारह घण्टों में दस क्यूबिक इञ्च से भी अधिक आक्सीजन निःस्सारण करते हैं। इसी तत्ववेत्ता के मतानुसार कुमुदनी का पन्द्रह पत्तों वाला पौधा पाँच महीने में ११७·७ गैलन आक्सीजन वायुमण्डल में मिलाता है। यह तो बतलाइये कि एक बड़ा वृक्ष एक ऋतु में कितना आक्सीजन पैदा करता होगा?

सूर्यनारायण दीक्षित।

पठानी सिक्कों पर नागरी।

सुबुक्तगीन के वंशधर, ग़ज़नी से निकाल दिये जाने पर, ५५० हिज्री में लाहोर में आकर बस गये। उनमें से मुइज़्ज़ुद्दीन मुहम्मद बिन साम अथवा शहाबुद्दीन ग़ोरी अपने भाई गयासुद्दीन के साथ, अपने चचा के द्वारा गोर के एक प्रान्त का शासक नियत किया गया। ५८ हिज्री में जब ग़यासुद्दीन गोर का बादशाह हुआ तब मुइज़्ज़ुद्दीन ने अपने भाई का सेनापति होकर खुरासान और ग़ज़नी को भी जीता। अनन्तर इसको भारत के भीतर घुसने की इच्छा हुई। ५७१ हि० में मुलतान को इसने विजय किया; परन्तु नहरवाल के राजा से भारी हार खाई। फिर ५८७ हि० में थानेसर के मैदान में दिल्लीपति पृथ्वीराज चैाहान से यह सम्पूर्णतः हराया गया। इस अपमान की कलक इसको बराबर बनी रही और अन्ततः भारतवर्ष के उसी सर्व-नाशी समरक्षेत्र पर उत्तरी भारत के समस्त राजदल सहित दिल्ली के चैाहानराज का द्वितीयबार महाभारत के समान मुइज़्ज़ुद्दीन द्वारा अधःपात हुआ। यही मुइज़्ज़ुद्दीन मुहम्मद बिन साम, जिसे शहाबुद्दीन भी कहते हैं, दिल्ली की पठान बादशाहत की नीव डालनेवाला हुआ। इस महाभारत से भारतवर्ष इस तरह वीररहित हो गया कि मुइज़्ज़ुद्दीन के आजन्म दास क़ुतुबुद्दीन, अपने स्वामी के चले जाने पर, इस देश को सर करके एकछत्र राज्य स्थापित करने में समर्थ हुआ। ५९९ हिज्री में अपने भाई के मर जाने पर मुइज़्ज़ुद्दीन ग़ज़नी का शासक हुआ। तीन वर्ष बाद ६०२ में जिस मुहम्मद-बिन-साम के पुरखे ग़ज़नी से भाग कर भारत में आ छिपे थे, उसी भारत को जिसने छल-छद्म पूर्वक आत्मसात् किया और देश जय करने में छल ही जिसका महा साधन और बल था, वही मुहम्मद गद्दी पाने के तीन ही वर्ष बाद अपने ही शिविर में जङ्गली गक्करों से मारा गया।

इसी मुहम्मद से लेकर इब्राहीम लोदी तक पठानों ही के विजय-क्षेत्र कुरुक्षेत्र पर मुग़लमहीप बाबर द्वारा उनके पतन तक की राजमुद्राओं पर नागरी अक्षर छपे हुए हैं। उन्हींमें से कुछ का वर्णन यहां पर किया जाता है। पठानों के बाद मुग़लों के समय में जब हिन्दी की जगह उर्दू नाम की एक नई हिन्दी का प्रचार हुआ तभी से सिक्कों पर नागरी का छपना भी बन्द हुआ। *

पहला बादशाह मुईज़ुद्दीन मुहम्मद-बिन साम (शहाबुद्दीन ग़ोरी) (११९३-१२०५ ई०)

[१]

चांदी तांबा मिला हुआ २९ ग्रेन † तैाल। सिन्ध टँकसाल।

ऊपर—अरबी

पृष्ठ—अश्वारोही। स्री हंमीरः

[२]

चाँदी—तांबा ४९ ग्रेन। दिल्ली टँकसाल।

ऊपर—स्री महमद सामे

पृष्ठ—स्री हंमीरः

---

* मुसल्मान बादशाहों में नागरी अक्षरों का प्रचार महमूद ग़ज़नवी के समय से है। लाहोर के आस पास का देश बहुत काल तक महमूद और उसके वंशजों के आधीन था। उसने लाहोर का नाम महमूदपुर रक्खा था और यहां से अपने नाम का सिक्का चलाया था। किसी किसी का मत है कि लाहोर के पास महमूदपुर नाम का एक पृथक् शहर महमूद ने अपने नाम से बसाया था, वहीं उसके सिक्के ढाले जाते थे। इन सिक्कों में से एक सिक्का चांदी का है। उसका वज़न ४५ ग्रेन है। वह ४१८ हिजरी में महमूदपुर की टकसाल में ढाला गया था। उसके नीचे की ओर अरबी में महमूद का नाम और खिताब वग़ैरह है और ऊपर की ओर नागरी अक्षरों में है—

अव्यक्त मेक
मुहम्मद अवतार
नृपति महमूद

और उसके किनारे किनारे चारों ओर यह है—

अव्यक्तीय नामे अयं टंकं तता महमूदपुर संवती ४१८

एक और चांदी का ऐसाही सिक्का मिला है जिस पर ये अक्षर हैं—

अयं टंकं घटे तता जिकोयेर संवती ४१९।

इन वाक्यों की संस्कृत शुद्ध नहीं है; परन्तु महमूद के लिए संस्कृत को आश्रय देना ही आश्चर्य्य की बात है।

† एक रत्ती में १⅞ ग्रेन होते हैं।

[३]

चांदी तांबा। ४९ ग्रेन। पेशावर टकसाल।

ऊपर—बैल।

.... द सामे।

पृष्ठ—अश्वारोही। श्री हंमीरः

भाले के पास नीचे से ऊपर के पढ़ने से फ़ारसी में "परशोर" (पेशावर) देख पड़ता है।

[४]

चांदी। तांबा। ४६ ग्रेन। ग्वालियर टकसाल।

ऊपर—महमद सामि।

पृष्ठ—अश्वारोही।

बैल, अश्वारोही और "हंमीर"। राजा लोग बैल और अश्वारोही अपने सिक्कों पर देते थे। "हंमीर" "अमीर" शब्द के लिए है। जब मुहम्मद बिन साम ने क़न्नौज लिया तब वहां के स्वर्ण सिक्कों पर भी उसने एक ओर क़न्नौज का राजचिन्ह "लक्ष्मी" रहने दिया और दूसरी ओर जहां राजाओं के नाम छपते थे—

श्री महमद बेने साम

अथवा

श्री हमीर महमद साम

छापा। अर्थात् उसने नये सिक्के न चलाकर पुराने ढांचे के ही सिक्के अपने नाम देकर जारी किये।

दूसरा बादशाह

कुतबुद्दीन ऐबक (१२०६–१२१०)

मुइज़्ज़ुद्दीन के कोई लड़का न था। एक ग़ुलाम के दिल्ली और दूसरे के ग़ज़नी मिली। अफ़सोस के साथ अपने तुर्क ग़ुलामों ही के वह बेटा समझता रहा। इन ग़ुलामों ने इतनी योग्यता ते अवश्य दिखलाई कि उसके मरने पर भी उसीके नाम के सिक्के इन्होंने जारी रक्खे। क़ुतुब मीनार पर एक जगह छोड़ कर ऐबक ने अपने के मालिक (बादशाह) कहीं नहीं कहा। अतः क़ुतुबुद्दीन ने कोई सिक्का अपने नाम का नहीं चलाया।

तीसरा बादशाह आराम शाह (१२१०)

ऐबक का पुत्र आराम पूरा एक वर्ष भी राज्य न कर सका। इसके तांबे के सिक्के मिले हैं जिनपर इसने अपने के अरबी में विजयी आरामशाह सुलतान लिखा है। यह अलतमश से, जो बदाऊं का सूबेदार था, मारा गया। उस समय सिन्ध नासिरुद्दीन के हाथ में और लखनावती अलीमर्दन के हाथ में थी।

चौथा बादशाह शमसुद्दीन अलतमश

(१२१० से १२३५ तक)

यह ऐबक का ग़ुलाम और दामाद था। बड़ा प्रतापी हुआ। इसकी सङ्गमर्मर की क़ब्र, अब तक, क़ुतुबमीनार से दक्षिण पश्चिम के, वर्तमान है। बग़दाद के ख़लीफ़ा से इसे ख़िताब मि[ला]। चङ्गेज़ इसी के समय में हुआ। रणथम्भौर और ग्वालियर इसने तोड़े। ग्वालियर के लिए इसको ११ महीने लड़ना पड़ा। अलतमश के सिक्कों के दो एक नमूने ये हैं—

[१]

चाँदी ताम्बा। ४८ ग्रेन। दिल्ली टकसाल। १२३१ ई०

एक तरफ़	दूसरी तरफ़
घुड़सवार	बैल
श्री हंमीरः	सुरिताण श्री समसदिण
	१२८८ (सं)

सुरिताण से अभिप्राय सुल्तान से और समसदिण से अभिप्राय शमसुद्दीन से है। संस्कृत में धर्म्म के वृष (बैल) कहते हैं। इसी लिए शायद हिन्दू राजा लोग अपने सिक्कों पर बैल का चित्र रखते थे। यह प्रथा मुसल्मानों ने हिन्दुओं ही से सीखी।

अलतमश ने जब रनथम्भौर विजय किया तब उसे बड़ी ख़ुशी हुई। उस क़िले के विजय का वृत्तान्त तबक़ातेनासिरी में इस प्रकार लिखा है—

व दर शहूर सन सलासा व अशरीं व सतमआया अज़ीमते फतेह क़िला रतनपूर मुसम्मिक फ़रमूद। व आँ क़िला दर हिसानत व मतानत व इस्तेहकाम दर तमामे मुमालिक हिन्दोस्तान मज़कूर व मशहूर अस्त। दर तवारीख़ अहेलहिन्द चुनी आउरदा अन्द के हफ़तादं बादशाह बपाये आँ क़िला आम्दा बूदन्द। व हेच यकैरा फतेह आँ हिसार मयस्सर न शुद। बाद अज़ मुद्दत चन्द माह

दर शहर सलासा व अशरीं व सतमआया बर दस्त बन्दगाने ऊ बफ़ज़्ले आफरीदगार फतेह शुद।

भावार्थ—६२३ हिजरी में उसने (अलतमश ने) रनथम्भौर विजय करने का पक्का इरादा किया। दृढ़ता में यह क़िला सारे हिन्दुस्तान में प्रसिद्ध है। हिन्दुओं के इतिहास में लिखा है कि ७० बादशाहों ने इसपर धावा किया; परन्तु एक भी इसे न ले सका। कई महीने की लड़ाई के अनन्तर ६२३ हि० में, यह क़िला, ईश्वर की कृपा से, उसके बन्दों के हाथ आया।

इस विजय के उपलक्ष में अलतमश ने एक नया सिक्का ढलाया। वह इस प्रकार का था—

[२]

चांदी-तांबा। ५३ ग्रेन। १२२६ ई० (१२८३ सं०)

एक तरफ़	दूसरी तरफ़
बीच में—अरबी में	श्री सुलता
अलतमश का नाम	लितितिमिसि
किनारे में—ढलने की	सं १२८३
तारीख़ आदि	

टकसालवालों से तुर्की शब्द अलतमश नागरी में उच्चारण करते और नक़्शा करते नहीं बना। इस लिए उन्होंने लितितिमिसि कर दिया।

[३]

तांबा। २८ ग्रेन। प्रायः अप्राप्य

एक तरफ़ अरबी में	दूसरी तरफ़
शम्श	श्री समसदीन

जब तक शमसुद्दीन अलतमश ने देहलीमें बादशाहत की तब तक सात विदेशी बादशाह या सेनापति ऐसे हुए जिन्होंने हिन्दोस्तान का कुछ पश्चिमी भाग अपने अधिकार में रक्खा और अपने नाम का सिक्का चलाया। उनके नाम ये हैं—

१ ताजुद्दीन इल्दज़	४ चंगेज़खां
२ अलाउद्दीन मुहम्मद ख़ारिज़मी	५ हसन क़रलघ़
	६ उज़बेग पाई
३ जलालुद्दीन मनकबरनी	७ नासिरुद्दीन कुबाचा

१ ताजुद्दीन इल्दज़। यह पहले पठान बादशाह मुहम्मद बिन साम की तरफ से करमान और ग़ज़नी का सूबेदार था। वहां से जब इसे अलाउद्दीन मुहम्मद ख़ारिज़मी ने निकाल दिया तब यह पञ्जाब में आया और यहां इसने अपने नाम का सिक्का चलाया। इसके कई सिक्के पाये गये हैं। उनमें से दो में, एक ओर उसका नाम और ख़िताब आदि है और दूसरी ओर एक घुड़सवार के नीचे "श्री हंमीरः" है।

२ अलाउद्दीन मुहम्मद ख़ारिज़मी। ग़ज़नी, हिरात और पेशावर आदि की टकसालों से इसने कई प्रकार के सिक्के, सोने और चाँदी के, चलाये उन सब पर धर्म्म के निशान वृषभराज विराजमान हैं। एक में नागरी अक्षरों में "सम" और दूसरे में "श्री हमीरः" का भी पता मिलता है।

३ जलालुद्दीन मनक़बरनी। इसका एक चाँदी और तांबे का सिक्का बहुत घिसा हुआ मिला है। उस पर केवल "श्री" पढ़ा जाता है। दूसरा अच्छी दशा में है। वह चांदी और तांबे का है और तौल में ५४ ग्रेन है। उस पर हैः—

एक तरफ़	दूसरी तरफ़
घुड़सवार	बैल
श्री हमीरः	श्री जलालदीं

४ चंगेज़ खां के जितने सिक्के मिले हैं उनमें नागरी नहीं है। नागरीवाले भी सिक्के शायद जारी रहे हों।

५ हसन क़रलघ। इसके किसी किसी सिक्के पर राजपूत सवार और "श्री हमीरः" है; और किसी किसी पर बैल और "श्री हमीरः" है। एक पर "श्री हसण कुरल" छपा हुआ है।

६ उज़बेग पाई के दो ही सिक्के मिले हैं। उन पर नागरी नहीं है। उनके एक तरफ "ज़रब मुलतान" और दूसरी तरफ़ "यसबक़ पाई" है।

७ नासिरुद्दीन कुबाचा। यह उच्च का गवर्नर था। उच्च पञ्जाब में एक प्रसिद्ध राजधानी थी। वहीं यह स्वाधीन हो गया और अपने नाम का सिक्का

चलाने लगा। सरहिन्द से भक्खर तक का देश इसके अधिकार में था। उस की गवर्नरी मुहम्मद बिन साम ने इसे दी थी। "स्त्री हमीरः" तो इस के कई सिक्कों में है। परन्तु एक में इसका नाम भी है। यथा—

एक तरफ़	दूसरी तरफ़
सवार	बैल
स्त्री हमीरः	स्त्री कुबाचा सुरिता

जिस सिक्के पर जगह रही है उस पर "सुरिता" के आगे "ण" रखकर "सुरिताण" (सुल्तान) पूरा कर दिया गया है।

पांचवां बादशाह रुकुनुद्दीन फ़ीरोज़शाह (१२३५–३६ ई०)

यह बड़ा ही ऐय्याश और दुःशील बादशाह था। इसने कुल ६ महीने राज्य किया। इसके एक सिक्के में वही "स्त्री हंमीरः" है। इसका दूसरा सिक्का बहुत दुर्लभ है। वह ५१ ग्रेन तौल में है। धातु उसकी चांदी-तांबा है। उस पर है—

एक तरफ़	दूसरी तरफ़
सवार	झूल-सहित बैल
स्त्री हंमीरः	सुरिताण स्त्री रूकण दीण

छठी बादशाहज़ादी रिज़ीया (१२३६–३९ ई०)

इसके पहले तुर्किस्तान में मलिका तुरकान और तुरकाने ख़ातून नाम की दो स्त्रियां राज्यासन पर बैठ चुकी थीं। परन्तु हिन्दोस्तान के लिए स्त्री का बादशाह होना यह पहला ही उदाहरण है। रिज़ीया अल्तमश की लड़की की। रुकुनुद्दीन को उसकी मा ने गद्दी से उतार दिया और मा को हटा कर रिज़ीया सिंहासनासीन हुई। यह परदा न करती थी; घोड़े पर सवार होती थी; दरबार में आती थी; और अपने करने के काम ख़ुद करती थी। जलालुद्दीन याक़ूत नाम का एक हबशी इसका प्रेमपात्र हो गया था। सरहिन्द के गवर्नर इख्तियारुद्दीन से जब रिज़ोया का युद्ध हुआ तब यह हबशी मारा गया। रिज़ोया भी क़ैद हो गई। इख्तियारुद्दीन रिज़ोया को क़ैद करके देहली को ओर बढ़ा। वहां वह भी मारा गया और रिज़ीया भी मारी गई। रिज़ोया के कई सिक्के मिले हैं। उन में से किसी किसी के एक ओर सवार और "स्त्री हमीरः" है और दूसरी ओर السلطان الاعظم رضيه الدنيا والدين (अस्सुल्तानुलाज़म रिज़ीयउद्दुनिया व उद्दीन) है। इससे जान पड़ता है कि रिज़ीया उसका नाम न था; यह उसकी पदवी (उपाधि, ख़िताब) थी।

सातवां बादशाह मुइ,ज़ुद्दीन बहराम शाह (१२३९–४२ ई०)

रिज़ीया के मारे जाने पर बहरामशाह बादशाह हुआ। वह अल्तमश का पुत्र था। यह भी अपने भाई के समान बादशाह होने के सर्वथा अयोग्य था। अपने लड़कों की अयोग्यता का पूरा पूरा ज्ञान अल्तमश को था। यह बात उसने साफ़ कह दी थी। वह रिज़ीया को बादशाहत देना चाहता था; परन्तु बलवा होने के भय से अपने जेठे लड़के ही को उसने युवराज बना लिया था। तथापि रिज़ीया से वह बहुत प्रसन्न था; उससे राज्यसम्बन्धी काम भी वह लेता था।

बहरामशाह के वज़ीर ने उसे क़ैद करके मरवा डाला। इसके कई सिक्कों पर नागरी ने स्थान पाया है। उन में से एक की रचना ऐसी है—

चाँदी और ताँबा; तौल ५४ ग्रेन।

एक तरफ़	दूसरी तरफ़
सवार	बैल
स्त्री हंमीर	सुरिताण स्त्री मुअजंदी

आठवां बादशाह अलाउद्दीन मसऊद (१२४१–१२४६ ई०)

बहरामशाह के मरने पर इज़्ज़ुद्दीन बलबन गद्दी पर बैठा। वह अल्तमश का दामाद था। परन्तु वह कुछ ही घण्टों में तख्त से उतार दिया गया। रुकुनुद्दीन फीरोज़ के पुत्र अलाउद्दीन मसऊद ने राज्य पाया। तबक़ातेनासिरी नामक इतिहास का लिखनेवाला मिनहाजुस्सीराज इस समय

देहली में क़ाज़ो था। वहां से वह बङ्गाल के गवर्नर तुग़न ख़ाँ के यहां चला गया। वहां का गवर्नर, उस समय, लखनावती में रहता था। मिनहाजुस्सीराज ने पठान बादशाहों का बहुत ही अच्छा इतिहास लिखा है। बहुत सा वृत्तान्त उसने आँखों देखा लिखा है अलाउद्दीन मसऊद के कई सिक्कों पर "स्रो हमोरः" है। परन्तु एक में विशेषता है—

चाँदी तांबा; तौल ५० ग्रेन।

एक तरफ़	दूसरी तरफ़
शङ्कर का नन्दो	सवार
सुरिताणस्री अलावदिण	स्री षलीफ

इस बादशाह का एक और सिक्का मिला है। उस पर "अलादिन" है।

नवां बादशाह नासिरुद्दीन महमूद (१२४६-६५ ई०)

यह बादशाह विद्या का बड़ा व्यसनी था। यह बहुधा क़ुरान की नक़ल किया करता था। लिखने में इसको बड़ा अभ्यास था। हलाकूशाह, मुग़ल के भेजे हुए दूत इसी के समय में सबसे पहले पहल देहली आये। इसके सिक्कों में भी "श्री हमीर" पाया जाता है। १० रजब ६५२ हिजरी का इसका एक शिलालेख अलीगढ़ के एक मीनार पर था; परन्तु ग़दर में उसे किसी ने नष्ट कर दिया।

दसवां बादशाह ग़यासुद्दीन बल्बन (१२६५-८७ ई०)

इसीके समय में पहले पहल सोने का बादशाही सिक्का जारी हुआ। इसका ४७३ ग्रेन का एक तांबे का सिक्का मिला है। उसपर है—

एक तरफ़	दूसरी तरफ़
السلطان الاعظم	बीच में بلبن (बलबन)
غياث الدنيا والدين	किनारे में—श्री सुलतां
(अस्सुलतानुलाज़म	ग़यासु दीं
ग़यासुद्दुनिया व उद्दीन)	

देहली के पास एक क़सबा पालम है। उसमें हरिपाल के पुत्र उटर की बनवाई हुई एक बावली है। उसमें एक लेख था जो सिपाही-विद्रोह के समय नष्ट होगया। इस लेख में ग़यासुद्दीन तक जितने मुसलमान बादशाह इस देश में हुए सबके नाम इस प्रकार खुदे हुए थे। यथा—

१ शहाबुद्दीन	
२ कुतबुद्दीन	(पदवो "भूपाल")
३ शमसुद्दीन	
४ फेरोज़शाह	(पदवी "भूमिपति")
५ जलालुद्दीन	(रिज़ीया)
६ मौजद्दीन	(पदवो "नृप")
७ अलावुद्दीन	(पदवो "नृपति")
८ नासिरुद्दीन	(पदवी "पृथ्वीन्द्र")
९ ग़यासुद्दीन	(पदवी "श्री हम्मीर")

इस नामावली में तीसरा बादशाह आरामशाह छोड़ दिया गया है; और रिज़ीया का नाम जलालुद्दीन लिखा है।

ग्यारहवां बादशाह मुइज़ुद्दीन कैक़ुबाद
(१२८७-९० ई०)

तुर्की वंश का यह अन्तिम बादशाह हुआ। बलबन का पौत्र और नासिरुद्दीन महमूद का यह पुत्र था। नासिरुद्दोन बङ्गाल का गवर्नर था। वह वहीं रहा। कैक़ुबाद देहली का बादशाह होगया। यह अत्यन्त विलासशील था। इसी कारण इसे बहुत जल्द पक्षाघात रोग होगया। इसे इसके मंत्री जलालुद्दीन ख़िलजी ने मरवा डाला और आप देहली का बादशाह होगया। कैकुबाद के सिक्कों में से एक सिक्का ऐसा मिला है जिसके एक तरफ़ फारसी में كيقباد (कैकुबाद) ऊपर और "श्री सुलतां मुज्जुदीं" नीचे है।

११९२ से १५५४ ई० तक देहली में ४० बादशाहों ने बादशाहत की। ये ४० बादशाह पृथक् पृथक् ६ ख़ानदान के थे। इन ६ में से तुर्की ख़ानदान के बादशाहों के सिक्कों का वर्णन होचुका। इसके आगे ख़िलजी, तुग़लक और लोदी आदि ख़ानदान के सिक्कों का वृत्तान्त की किसी समय हम लिखेंगे। अगले बादशाहों के सिक्कों में भी अनेक सिक्के ऐसे मिले हैं जिनपर नागरी अक्षरों को

स्थान दिया गया है। इससे यह सिद्ध है कि मुसल्मान बादशाहों ने नागरी लिपि के इस देश की प्रधान लिपि मानी थी। यदि ऐसा न होता तो वे कदापि इस लिपि का व्यवहार अपने सिक्कों पर न करते। बड़े खेद और आश्चर्य्य की बात है कि हमारी परम सभ्य और परम न्यायी गवर्नमेण्ट ने राजराजेश्वर के नवीन रुपये पर नागरी अक्षरों को न रखकर फ़ारसी अक्षरों में يك روپيه (यक रुपया) रक्खा है। यह अनुचित है। इसका शीघ्र ही संशोधन होना चाहिए। फ़ारसी लिपि की अपेक्षा नागरी लिपि ही के जानने वाले सब प्रान्तों में अधिक हैं। इसलिए उसी लिपि का प्रयोग सिक्कों पर होना चाहिए।

अद्भुत योगायोग।

[गत अङ्क के आगे]

छद्मवेशी पलिक्लीनीज़ और कैमिलो धीरे धीरे उसी ओर बढ़े और युवक-युवती की नई-प्रीति की बातचीत सुनने लगे। उन लोगों ने ऐसा छद्मवेश धारण किया था कि, जिससे युवराज किसी तरह से पिता वा कैमिलो को न पहिचान सका।

पारदिता की मीठी मीठी बातें सुनकर राजा विस्मित हुए। उन्होंने कैमिलो से कहा—"देखो, मैंने कभी ऐसी सुन्दर स्त्री को नीच कुल में उत्पन्न होते नहीं देखा। विशेष कर मैं इसकी बातें सुनकर और भी मोहित हुआ हूं। इसका हाव भाव तथा विनीत व्यवहार देखने से यह नहीं जान पड़ता कि, बालिका हीन-वंश में जन्मी है"।

कैमिलो अधिकतर चमत्कृत हुआ। उसने भी राजा के वाक्यों की पोषकता कर कहा—"मुझे भी यही जान पड़ता है। रूप तथा गुण में यह बालिका राजरानी होने योग्य है"।

राजा ने गड़रिया से एकान्त में पूछा—"क्यों मित्र! तुम्हारी पुत्री के साथ जिस तरुण युवक की बातचीत हो रही है उसका क्या नाम है?"

गड़रिया ने कहा—"इसका नाम दोरिक्लस है। यह मेरी तनया का प्रणयप्रार्थी है। मेरी तनया भी इसकी प्रीति में आसक्त है। वास्तव में इन दोनों का परस्पर प्रेम-चुम्बन देखकर यह नहीं जान पड़ता कि, कौन किसे अधिक चाहता है। और यह भी सत्य है कि, यदि दोरिक्लस ने मेरी कन्या को व्याहा तो, उसने कभी स्वप्न में भी जो नहीं विचारा, इतना वह दहेज पावेगा"। पारदिता के बचे हुए गहने और भेड़ों के झुंड, जोकि उसने बड़े यत्न के साथ पाला था, उसके विवाह में दहेज के लिए थे। यही उसके कहने का मतलब था।

छद्मवेशी राजा ने गले का स्वर बदलकर अपने पुत्र से कहा—"युवक! आज ऐसा समारोह का दिन है। सभी आनन्द-उत्सव मना रहे हैं। परन्तु तुम निराले में अपनी प्राणप्यारी को लिए चुपचाप बैठे हो, इसका क्या कारण है? हम लोगों का भी एक समय था जिसे हम कितने आनन्द के साथ बिताते थे। प्रणयिनी को कितने ही बिलास वस्तु उपहार दिया करते थे। आज इस उत्सव में मैं सैकड़ों चीज़ें बिकती हुई देख रहा हूं; परन्तु तुमने तो एक चीज़ भी अपनी प्रणयिनी को ख़रीद कर उपहार नहीं दिया"।

राजकुमार पिता को नहीं पहिचान सका। उसने एक साधारण मनुष्य समझ कर कहा—"महाशय! मेरी यह मनोमोहिनी सामान्य विलास द्रव्य की प्रार्थिनी नहीं है। यह जिस अमूल्य धन की अभिलाषिणी है, वह मेरे हृदय में बन्द है"।

इसके उपरान्त धीरे से उसने पारदिता से कहा—"प्राणप्रिये! जिस वृद्ध महोदय को देख रहा हूं वे एक समय रसिक थे। प्रेम का मर्म ये अवश्य ही जानते हैं। अतएव यही साक्षी रहें; मैं मुक्त-कण्ठ से अपने चित्त के भाव को प्रकट करता हूं"।

इतना कह कर फ्लोरिज़िल ने छद्मवेशी पिता से कहा—"महाशय! आप साक्षी रहें, मैं स्थिर-प्रतिज्ञ

होकर कह रहा हूं कि मैं इसी सुन्दरी को व्याहूंगा। यही मेरी धर्मपत्नी होगी। आप मेरे अङ्गीकार-वाक्य के साक्षी हूजिए"।

बस फिर क्या था; ज्वाला धधक उठी। पुत्र की ऐसी कुप्रवृत्ति की बात सुनतेही छद्मवेश उतार मारे क्रोध के काँपते हुए राजा ने कहा—"रे कुलांगार! हां, मैं तेरे इस अवैध-प्रणय-बन्धन का साक्षी हूं! धिक्कार है तुझे"!

पिता ने पुत्र का हद से ज़्यादा तिरस्कार किया और उस सरला पारदिता से भी कहा—"ख़बरदार, यदि फिर युवराज की प्रणय-प्रार्थिनी हुई वा इसे अपने यहाँ आने दिया तो तेरे साथ तेरे वृद्ध पिता का प्राण जायगा"।

यह कहकर राजा पालिक्लीनीज़ वहाँ पल भर भी न ठहरे। जाते समय वे कैमिलो से कह गये—"फ्लोरिज़िल को साथ लेकर तुम तुरन्त आओ; मैं चला"।

दारुण अनुताप और अभिमान से राजतनया पारदिता का अन्तर जल उठा। सिंह का शिशु सिंह ही के स्वभाव को प्राप्त होता है। क्रोध भरे स्वर से पारदिता ने कहा—"क्या कहूं, यदि राजा सवंश हम लोगों का विनाश कर दें तो भी मैं भीत वा विचलित नहीं हूं। बड़े कष्ट से मैंने अपने को सम्हाला। एक बार नहीं वरन दो बार मैं राजा के कर्कश वचन का प्रत्युत्तर देने को उद्यत हुई और मैं कहने ही लगी थी—'महाराज, सूर्य भगवान सर्वत्र ही अपनी किरणों को एकसी बिखराते हैं। आपके महल पर जिस सूर्य का उजियाला पड़ता है, दरिद्र की झोंपड़ी पर भी वही प्रकाश पड़ता है'। किन्तु हाय! मेरे मन की बात मन ही में रह गई"।

इसके बाद मनोवेग सम्हालने में असमर्थ हो गहरे दुःख के साथ उसने कहा—"इतने दिनों पीछे मेरा सुख-स्वप्न खुला! मेरे राजरानी होने की आशा पूरी होगई! युवराज, मुझे त्यागो। भाग्यवान, जाओ, अपने स्थान को जाओ। नीच कुल में मैं जन्मी हूं—लाचार मैं भेड़िओं का दूध दुहूंगी और रो रो कर जीवन बिताऊंगी"।

इसके अनन्तर कैमिलो ने राजकुमार को बहुत समझाया। पारदिता को त्याग घर लौटने के लिए उसने अनुरोध किया। परन्तु उसने देखा, फ्लोरिज़िल अचल अटल है। वह किसी तरह पारदिता के प्रणय-बन्धन को नहीं तोड़ना चाहता। अतः उसने कैमिलो से गिड़गिड़ा कर सविनय प्रार्थना की।

इस बार सहृदय कैमिलो का हृदय पिघला। उसके चित्त में एक साथ ही विस्मय और कौतूहल होने लगा। "नीच गड़रिया के घर इस तेजस्विनी स्त्री ने किस तरह जन्म लिया? इसके हृदय के महत्व और उच्चाकांक्षा देख यह नहीं जान पड़ता कि यह रमणी सामान्या है। देखता हूँ कि दोनों में प्रेम-बन्धन दृढ़ हो गया है। युवराज किसी तरह इस प्रेम-बन्धन को नहीं तोड़ सकेगा"।

यह विचार, कैमिलो ने मनहीमन कुछ स्थिर किया, और वाक्यों से दोनों को कुछ आश्वासन भी दिया। इस घटना के पूर्व, कैमिलो ने समाचार पाया था कि, सिसिलिया के राजा लियांटिस अब अपने दोषों को समझ कर बड़ा ही पश्चात्ताप कर रहे हैं। यद्यपि कैमिलो बोहिमिया के राजा के यहाँ परम आदर के साथ रहता था, तथापि जननी जन्मभूमि तथा पूर्वप्रभु राजा लियांटिस की स्नेहपूरित कृपादृष्टि को प्राप्त करने के लिये वह अत्यन्त उत्सुक हुआ। कैमिलो ने फ्लोरिज़िल से कहा—

"युवराज, यदि आप मेरी बात को मानें तो आप को यह मनोयातना नहीं भोगनी पड़ेगी। चलिए, हम सब मिलकर इस अवसर पर सिसिलिया-राज्य को चलें। राजा लियांटिस के शरणापन्न होने से आपके अभीष्ट सिद्धि में किसी प्रकार का विघ्न न होगा। वे हम लोगों को सादर ग्रहण करेंगे। और सम्भव है, आपके पिता भी राजा लियांटिस के अनुरोध करने पर आपके प्रति प्रसन्न

हो जायें और इस सुन्दरी के साथ विवाह भी कर दें"।

अन्त में यही स्थिर हुआ। पारदिता सहित फ्लोरिज़िल, कैमिलो के साथ सिसिलिया-राज्य को जाने में सम्मत हुआ—और वृद्ध गड़रिया भी इन लोगों के साथ जायगा, यह भी निश्चय हुआ। यथा-समय वे लोग जहाज़ पर चढ़ सिसिलिया-राज्य को चले। गड़रिया ने अपनी अन्यान्य चीज़ों के साथ पारदिता के बचपन की पोशाक और बाक़ी गहनों को भी ले लिया।

राजा लियांटिस दुर्मतिवश असमय स्त्री-पुत्र-कन्या को गँवा कर और झूठे मित्र-द्रोह के कारण बड़े दुःख के साथ दिन बिता रहे थे। आज उसी बन्धु-पुत्र और कैमिलो को अपने राज्य में आये हुए देखकर वह बहुत प्रसन्न हुए। पारदिता का परिचय फ्लोरिज़िल ने अपनी स्त्री कह कर दिया। राजा एकटक उस रमणी को निहारने लगे। निहारते निहारते उनके चित्त में एक अपूर्व भाव उदित हुआ। स्वाभाविक वात्सल्य-स्नेह से उनका हृदय पूर्ण हो गया। अभागिनी हारमियोन की सुध हो आई। वही मुख, वही नेत्र, वही सौन्दर्य्य—एक एक कर सभी बात स्मरण होने लगी। पारदिता की आकृति ठीक रानी हारमियोन सी जान पड़ती थी। अभागे राजा ने एक लम्बी सांस छोड़ कर कहा—"हाय! मैंने ही अपना नाश किया! दुर्मतिवश यदि मैं उस कन्या को जङ्गल में न छुड़वाता तो, वह भी आज इतनी ही बड़ी हुई होती!!"

इसके उपरान्त बोहिमिया के युवराज को उन्होंने कहा—"वत्स! कुग्रहवश मैं तुम्हारे पिता की नाईं महानुभाव व्यक्ति के बन्धु-स्नेह से वंचित हुआ हूँ। उनको देखने की मुझे बड़ी लालसा है। भगवान क्या मेरी यह लालसा पूर्ण करेंगे?"

वृद्ध गड़रिया ने लगातार सब बातें सुनीं और पारदिता को देख कर राजा के हृदय में "अपत्य-स्नेह" उदित होने का कारण केवल वही समझा। वह समझा कि, पारदिता राजा लियांटिस ही की कन्या है। क्योंकि, बालिका को वन में छुड़वाने के बाद की बाकी घटना केवल वही जानता था।

यथासमय गड़रिया ने, राजपुत्र फ्लोरिज़िल, पारदिता, कैमिलो तथा ऐण्टिगोनस की पत्नी पालिना के समक्ष पारदिता की जीवन-कहानी विस्तार-पूर्वक कही। जिस अवस्था में पारदिता को जङ्गल में उसने देखा, और ऐण्टिगोनस जिस प्रकार रीछ द्वारा मारा गया, आदि एक एक बात उसने स्पष्ट रूप से कह डाली। फिर पारदिता की पोशाक और बचे हुए गहनों को उसने दिखाया। पालिना ने देखकर कहा "महारानी हारमियोन ने यही पोशाक और गहने पहनाकर अपनी कन्या को राजसभा में भेजा था।" उसी पोशाक के साथ लगे हुए एक टुकड़े काग़ज़ पर उसने अपने स्वामी ऐण्टि-गोनस का हस्ताक्षर देखा। सब के मन में एक साथ ही आश्चर्य और हर्ष होने लगा। सबको ध्रुव विश्वास हो गया कि पारदिता राजा लियांटिस ही की कन्या है!

पालिना के चित्त की अवस्था इस समय विचित्र है। एक ओर अतुल आनन्द, दूसरी ओर गभीर दुःख। अभागिनी रानी की प्राणप्यारी खोई हुई कन्या को विधाता ने मिला दिया, देवता का प्रत्या-देश सफल हुआ। किन्तु हाय! दूसरी ओर उस की छाती पर वज्र गिरा। पालिना का पति अब इस संसार में नहीं है। दुर्भाग्य ऐण्टिगोनस ने पाप का फल हाथो हाथ पाया; रीछ द्वारा वह मारा गया। यह दुःखदायी समाचार सुनकर वह व्याकुल हो गई। एक बार उसकी इच्छा होती थी कि चित्त खोल कर हँसूं और दूसरी बार होती थी कि ढाड़ मार कर रोऊं। अन्त में अभागिनी हारमियोन की उस बिछुड़ी हुई कन्या को पाकर पालिना पति-शोक भूल गई, और आनन्द मनाने लगी। यथासमय राजा लियांटिस ने भी यह शुभ समाचार पाया। राजा के उस समय का आनन्द देखते ही बन आता था। कन्या की अवस्था का उस समय उन्हें तनिक भी ध्यान न रहा। पारदिता को सस्नेह उन्होंने

छाती से लगाया, और वात्सल्य-स्नेह से बारम्बार वे उसका मुख-चुम्बन करने लगे। गद्गद स्वर से वे बार बार यही बात कहते—"हाय! आज यदि तुम्हारी जननी जीवित रहती!"

राजा लियांटिस बिछुड़ी हुई कन्या के पाकर जैसे प्रफुल्लित हुए, प्राणप्यारी हारमियोन के शोक से वे वैसा ही दुःखित हुए।

पालिना ने इसी अवसर पर राजा से कहा—"महाराज, महारानी के मैं कैसी स्नेह-दृष्टि से देखती थी यह आप जानते हैं। मैंने बड़े यत्न और बहुत द्रव्य ख़र्च कर इटाली देशवासी एक चित्र-कार द्वारा उसी प्रिय सखी हारिमियोन की एक अद्भुत पत्थर की मूर्ति बनवाई है। वह मूर्ति मेरे घरही पर रक्खी हुई है। यदि आप की इच्छा हो तो, कृपा कर मेरे घर पर चलिए, और हार-मियोन की मनोहर मूर्ति देखकर नयनों के सार्थक कीजिए। वह मूर्ति इतनी सुन्दर और स्वाभाविक बनी है, जिसे देखकर यह नहीं प्रतीत होता कि आप जड़मूर्ति के देख रहे हैं।

पालिना के प्रस्ताव पर राजा सम्मत हुए। पारदिता ने जन्म से आज तक माता के मुख के नहीं देखा था। इसलिए उसने भी बड़ी व्यग्रता के साथ जननी की प्रतिमूर्ति देखनी चाही।

यथासमय पालिना घर लैाटी। स्वयं राजा उसके घर पधारेंगे, इस लिए जहाँ तक बन पड़ा, उसने राजा के आदर-सत्कार के लिए सब प्रबन्ध ठीक कर रक्खा।

कन्या-सहित राजा लियांटिस पत्नी की मूर्ति देखने के लिए पालिना के घर पर उपस्थित हुए। कैमिलो, फ्लोरिज़िल आदि भी साथ गये। मूर्ति कपड़े से ढकी हुई थी। पालिना ने धीरे धीरे उस कपड़े के हटा दिया। मूर्ति प्रकटित हुई। लियांटिस इकटक उस मूर्ति की ओर निहारने लगे।

पालिना ने पूछा—"महाराज, महारानी की मूर्ति ठीक बनी है न?"

राजा ने कहा—"हां, बनानेवाला बड़ा सुदक्ष है। इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु इस मूर्ति पर रानी के मुख की वह स्वाभाविक कमनीयता नहीं है; अवस्था में कुछ अधिकता है"।

पालिना ने उत्तर दिया—"महाराज, यह ते उस कारीगर की विशिष्ट दक्षता का परिचायक है। क्योंकि, रानी यदि जीवित होतीं ते इतने दिनों में वे इसी अवस्था के प्राप्त होतीं"।

अन्त में राजा ने दुःख के साथ कहा—"हाय! जिस दिन मैं नई प्रीति से रानी के पीछे से पकड़ने गया था, उस समय वे इसी भाव से खड़ी थीं"।

पालिना—"महाराज अनुमति दें ते, मैं इस मूर्ति के ढक दूँ"।

राजा ने आग्रह के साथ कहा—"नहीं, नहीं, मत ढको। मैं और भी कुछ देर देखूँगा। आहा! जितना ही देखता हूं, उतनी ही मेरी दर्शन-पिपासा बढ़ती जाती है"।

पारदिता ने भी पिता के वचनों की पोषकता की। पालिना बोली—"बहुत देख भाल न कीजिये। अधिक देखने से आपके इस मूर्ति के सजीव होने का धोका हो सकता है। अनुमति दें ते ढक दूँ"।

राजा ने कहा—"नहीं, पालिना, मैं और देखूंगा। यह मूर्ति मुझे सजीव सी जान पड़ती है। परन्तु यह क्या! यह ते साँस ले रही है। बलि-हारी, यह मूर्ति सकरुण नेत्रों से मेरी ओर निहार रही है। तुम लोग मुझे पागल न समझना, मैं इस मूर्ति का मुख-चुम्बन करूँगा"।

राजा ऐसा करने के उद्यतही हुए थे कि, पालिना ने कहा—"ऐसा न कीजिए, क्योंकि इस मूर्ति के मुख पर अभी रङ्ग कच्चा है; मुँह लगातेही आपके मुँह में रङ्ग लग जायगा। महाराज, मैं सङ्केत करूँ ते यह मूर्ति आपका हाथ पकड़ सकती है"।

राजा के आश्चर्य की सीमा न रही। यह स्वप्न है या इन्द्रजाल! चित्रकार के क्या इतना सामर्थ्य है?

पालिना राजा का अभिप्राय समझ गई। उसने कहा—"महाराज, मैं इस असम्भव के सम्भव कर

दिखा रही हूं; इसलिए कहीं आप मुझे दुष्टा वा कुचरित्रा न समझिएगा। किसी प्रकार इन्द्रजाल या डाइन-मन्त्र द्वारा मैं यह कार्य्य कर रही हूं, यह बात भी मन में न लाइयेगा"। इतना कह कर उस चतुरा रमणी ने पहले से सिखाए हुए बाजा बजाने वालों को इशारा किया। वे लोग भी मनोमोहक बाजा बजाने लगे। राजा भी कठपुतली की नाईं रानी हारमियोन की उस पवित्र मूर्ति को देखने लगे। सरला पारदिता भी इकटक नेत्रों से माता की मूर्ति देखने लगी। फ्लोरिज़िल, कैमिलो आदि की भी दृष्टि उसी ओर आकर्षित थी। इसी समय अपने स्थान से धीरे धीरे वह मूर्ति नीचे उतरी। पालिना, पारदिता को उस मूर्ति के निकट लेगई। मूर्ति ने कन्या का मुख चुम्बन किया। अनन्तर रानी की आंखें डबडबा आईं। उन्होंने नम्र भाव से राजा का हाथ पकड़ा और करुण-कण्ठ से स्वामी की कुशल-वार्त्ता पूछी।

"प्राणाधिके!" सम्बोधन कर राजा ने अपनी प्रियतमा को गले से लगाया। उपस्थित लोग सभी आनन्द मनाने लगे।

रानी हारमियोन जीविता ही थीं। जिस समय राजा लियांटिस हिताहित ज्ञान से शून्य हो गये, उस समय बुद्धिमती पालिना ने विचारा कि—"जैसी अवस्था देखती हूं, इससे राजा का क्रोध दिनोदिन बढ़ता ही जायगा। ऐसी अवस्था में महिषी के जीवन में भी संशय है। अतएव, महिषी की कल्पित-मृत्यु-वार्त्ता का प्रचार करनी ही श्रेष्ठ है"।

जब राज-सभा में पुत्री की मृत्यु वार्ता सुनकर रानी हारमियोन मूर्च्छिता हुईं, उस अवसर पर पालिना रानी को विरल स्थान में लेगई और राजा को उसने यह समाचार सुनाया कि, रानी की मृत्यु हो गई है। यह बात पाठकों को अवश्य भली भाँति स्मरण होगी।

तब से उस बुद्धिमती रमणी ने सयत्न और गुप्त-रीति से अपने यहाँ ही रानी को रक्खा। जब उसने देखा कि, पुत्री प्राप्त होगई और राजा अपने किये पाप पर पश्चात्ताप कर रहे हैं, तब उसने यह आडम्बर रच रानी को मिला दिया।

राजा ने पालिना के आचरण से कहाँ तक आनन्द प्राप्त किया, यह केवल वेही समझे। यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि, वह वृद्ध गड़रिया भी राजा के स्नेह और कृतज्ञता का भाजन हुआ। पत्नी और पुत्री प्राप्त करके राजा के आनन्द की सीमा न रही।

इसी समय और एक शुभ-घटना हुई। बोहिमिया के राजा पालिक्सीनीज़ ने, सपुत्र कैमिलो को राजधानी लौटते न देख कर, यह सिद्धान्त किया कि, वे लोग सिसिलिया-राज्य में गये होंगे। क्योंकि, वे जानते थे कि, कैमिलो आज कल प्रायः ही स्वदेश जाने की इच्छा प्रकाश किया करता था। यह विचार उन्होंने भी इन लोगों का अनुसरण किया और यथासमय सिसिलिया में आ उपस्थित हुए।

राजा लियांटिस मारे आह्लाद के गद्गद हो गये। एक एक कर उनके सब कष्ट दूर हो गये। आज स्त्री, कन्या, बन्धु और प्राचीन प्रिय मन्त्री कैमिलो को पाकर वे अत्यन्त आह्लादित हुए। राजा लियांटिस ने शुद्ध-चित्त से राजा पालिक्सीनीज़ से क्षमा मांगी। दोनों ही बीती हुई बातों को बिसरा कर सन्तुष्ट हुए।

राजा पालिक्सीनीज़ सहर्ष पारदिता के साथ फ्लोरिज़िल का विवाह करने में सम्मत हुए। क्योंकि, पारदिता अब हीनवंश की पुत्री नहीं है। सरला बालिका को एक दिन वृथा डपट कर मर्माहत किया था, यह स्मरण कर राजा पालिक्सीनीज़ व्यथित हुए।

इसके बाद महा समारोह से फ्लोरिज़िल के साथ पारदिता का शुभ विवाह हो गया।

सती साध्वी हारमियोन स्वामी, कन्या और दामाद के साथ परम आनन्द से कालयापन करने लगीं।

श्रीवासुदेव मिश्र।

चिदम्बर ।

चिदम्बर मदरास से १९१ मील है। वह एक छोटा सा क़सबा है। उसकी आबादी कुल २०,००० है। परन्तु उसमें हिन्दुओं के दो एक बहुत प्राचीन मन्दिर हैं। इसी लिए उसका बड़ा माहात्म्य है। जो लोग रामेश्वर के दर्शन को जाते हैं वे चिदम्बर और कुम्भकोण के प्रसिद्ध मन्दिरों को देखे बिना नहीं लौटते। इसलिए आज हम चिदम्बर के प्राचीन मन्दिरों का वर्णन संक्षेप से करते हैं।

फ़रगुसन साहब का मत है कि चिदम्बर के मन्दिर दक्षिणी हिन्दुस्तान में बहुत पुराने हैं। उन का कोई कोई भाग इतना सुन्दर और इतना मनोमोहक है कि उसमें कलाकौशल की चरम सीमा पाई जाती है। पुरातत्व के जाननेवाले कहते हैं कि प्राचीन चोल राज्य की सीमा दक्षिण की तरफ़ चिदम्बर तक थी। इस राज्य की समय समय पर कई राजधानियां नियत हुई थीं। इसकी पहली राजधानी कावेरी नदी के तट पर ऊरीउर में थी; फिर कुम्भकोण में हुई। और अन्त में तञ्जापुर अर्थात् ताञ्जोर में।

चिदम्बर में सबसे बड़ा और सबसे प्रसिद्ध मन्दिर महादेव का है। विद्वानों का कथन है कि उसे राजा हिरण्यवर्ण चक्रवर्ती ने बनवाया था। यह राजा श्वेत कुष्ठ से पीड़ित था। इसी लिए लोग उसे श्वेतवर्मा कहकर पुकारते थे। वह एक बार देव दर्शन के लिए दक्षिण की ओर गया। यात्रा करते करते जब वह चिदम्बर में पहुँचा और वहां के तालाब में उसने स्नान किया तब उसका कुष्ठ नहाने के साथ ही नाश हो गया। अतएव उसने वहीं पर यह विशाल शिव-मन्दिर निर्माण कराया। किसी किसी का मत है कि राजा हिरण्यवर्ण ने इस मन्दिर को बनवाया नहीं; किन्तु कुष्ठ से आराम पाने पर केवल उसकी मरम्मत कराकर उसके आकार प्रकार को विशेष भव्य कर दिया।

परन्तु इस मन्दिर के विषय में एक दूसरे मार्ग से एक दूसरे ही प्रकार की बात विदित हुई है—मेकञ्ज़ी साहब ने दक्षिण में प्रचलित पुस्तकें बहुत खोज से इकट्ठा की हैं। उनमें से एक हाथ की लिखी हुई पुस्तक से सूचित होता है कि ९२७ से ९७७ ईसवी के बीच चोल देश में वीर नाम का एक



पश्चिमी गोपुर और शिवगङ्गा–ताल।

राजा हुआ। उसने एक बार समुद्र के किनारे शङ्कर को पार्वती के साथ ताण्डवनृत्य करते देखा। इस उपलक्ष्य में कनक-सभा के नाम का यह सुवर्ण मन्दिर उसने बनवाया और उसमें जो शिव की मूर्त्ति स्थापित की उसका नाम उसने नटेश्वर रक्खा। चाहे जिसने, चाहे जब, और चाहे जिस निमित्त इस मन्दिर को बनवाया हो, वह अवश्य दर्शनीय है। इसी लिए दूर दूर से लोग यहां दर्शनों के लिए आते हैं।

इस मन्दिर के चारों ओर ऊंची ऊंची दो दीवारें हैं। मन्दिर का कुल क्षेत्रफल ३२ एकड़ है। बाहरी दीवार उत्तर दक्षिण १८०० फ़ीट लम्बी और पूर्व पश्चिम १४८० फ़ीट लम्बी है। इस ३२ एकड़ भूमि के बीच में एक बहुत ही सुन्दर तालाब है। वह ३१५ फ़ीट लम्बा और १८० फ़ीट चौड़ा है। उसके चारों किनारों पर चार बड़े बड़े गोपुर हैं। जो गोपुर उत्तर और दक्षिण की ओर हैं वे लग भग १६० फ़ीट ऊपर आकाश में चले गये हैं।

तालाब के पास एक बहुत विस्तृत दीवानख़ाना है। वह ३४० फ़ीट लम्बा और १९० फ़ीट चौड़ा है। पहले इसमें १००० खम्भे थे। परन्तु फ़रगुसन साहब के गिनने पर वे ९८४ ही निकले। शायद १६ खम्भे गिर गये हैं। यह एक आश्चर्य्यकारक स्थान है। क्योंकि १००० खम्भे के नाम से प्रसिद्ध होनेवाले जितने स्थान इस देश में हैं उनमें से एकमें भी इतने खम्भे नहीं पाये जाते जितने कि चिदम्बर में हैं।

यहीं पर पार्वती का एक मन्दिर है। इस मन्दिर के अग्रभाग में बहुत बड़ी कारीगरी की गई है। उसे देखकर चित्त को अलौकिक आनन्द होता है।

पार्वती के मन्दिर से मिला हुआ एक और मन्दिर है। वह सुब्रह्मण्य के नाम से प्रसिद्ध है। उसके घेरे का परिमाण २५०×३०५ फ़ीट है। मन्दिर के सामने एक मोर और दो हाथियों की विशाल मूर्त्तियां हैं। उनके आगे एक बरांडा है। उसमें खम्भे हैं। उन पर जो काम है वह वर्णन से बाहर है। फ़रगुसन साहब का मत है कि यह मन्दिर ईसा की सत्तरहवीं शताब्दी का है। इस मन्दिर के घेरे के एक कोने में गणेश का एक मन्दिर है। सुब्रह्मण्य मन्दिर के हाते में कई छोटे छोटे मण्डप हैं। उनमें भिन्न भिन्न देवताओं की मूर्तियां स्थापित हैं।

शङ्कर का प्रधान मन्दिर तालाब से ३० गज़ दक्षिण की ओर है। पार्वती का मन्दिर दक्षिण पश्चिम की ओर है। शङ्कर की मूर्ति दिगम्बर है। वह चतुर्भुजी है। भुजाएं ऊपर को उठी हैं। दाहना पैर पृथ्वी पर रक्खा है; और बायां एक तरफ़ ऊपर को उठा है। मन्दिर की छत सुनहले गिलट किये हुए तांबे की चादर से मढ़ी हुई है। फ़रगुसन साहब कहते हैं कि यहां पर हिन्दोस्तान की एक बहुत ही प्राचीन और बहुत ही सुन्दर कारीगरी का नमूना है। वह एक छोटा सा मण्डप है जिसके अग्रभाग को ६ फ़ुट ऊंचे दो खम्भे थामे हैं। इस मण्डप में कई मूर्त्तियां नृत्य करती हुई देख पड़ती हैं। वे ऐसी भव्य और ऐसी सुघर हैं कि दक्षिणी हिन्दुस्तान में उनसे अधिक सुडौल और कोई मूर्ति नहीं देखी गई। इस मण्डप के दोनों तरफ़ रथों के चित्र हैं। उनके पहिए और घोड़े चित्रित करने में ऐसी अच्छी कुशलता दिखलाई गई है कि उनका रङ्ग कहीं कहीं फीका पड़जाने पर भी उनकी मनोहरता कम नहीं हुई।

१७६० ईसवी में अङ्गरेज़ों ने पहले पहल इस मन्दिर को अपने अधिकार में किया। परन्तु १७८१ ईसवी में ३००० आदमी लेकर हैदरअली ने उसे घेर लिया। अङ्गरेज़ों की सेना के नायक सर आयर-कूट थे। उनको मन्दिर छोड़ कर भागना पड़ा। भागने में उनकी एक तोप भी हैदरअली के हाथ आई। श्रीरङ्गपतन विजय होने तक यह मन्दिर हैदरअली और टीपू ही के आधीन रहा; परन्तु उस समय से इसका प्रभुत्व फिर अङ्गरेज़ों को प्राप्त हुआ। चिदम्बर दक्षिणी आरकट का एक "सब-डिवीज़न" है और सर्वथा अङ्गरेज़ राज्य के अन्तर्गत है।

ईश्वर ।

—नास्तिकास्तिक-सम्वाद—

[पूर्व प्रकाशित से आगे]

[४]

नास्तिक—आपके साथी, बात बात पर, कहा करते हैं कि इस सृष्टि की रचना अनादि, अविनाशी और शुद्ध-बोध-स्वभाव ईश्वर ने की है। परन्तु साथही वे यह भी कहते हैं कि उस ईश्वर के अस्तित्व का सबूत देते बैठना, समय को व्यर्थ खोना और काग़ज़, क़लम और स्याही को व्यर्थ ख़र्च करना है। लेकिन ऐसी बातों से काम थोड़ेही चल सकता है। सबूत देना चाहिए; और काग़ज़, क़लम, दावात का ख़र्च भी उठाना चाहिए। बड़े बड़े आलिम और अक़लमन्द इन्हीं सबूतों की खोज में हैं।

आस्तिक—यह बहुत सच है कि उन सबूतों को, यहां, फिर से देना व्यर्थ कालातिपात करना है। व्यर्थ इसलिए, क्योंकि, किसी ने उनका सयुक्तिक और सशास्त्र खण्डनही नहीं किया। जान पड़ता है कि आप उन सबूतों से बिलकुल वाक़िफ़ नहीं हैं; इसीसे आप उन्हें जानना चाहते हैं। बड़े बड़े आलिम और अक़लमन्दों ने उन सबूतों को बख़ूबी जाना है; उनपर विचार किया है—नहीं, चिरकाल तक, उनका मनन भी किया है; और आख़िर को, वे उनकी यथार्थता पर यहां तक क़ायल हो गये हैं कि उन्होंने उनको मान भी लिया है। वे लोग, अथवा, यों कहना चाहिए, कि यह सारी दुनिया, आपसे मुत्तफ़िक़ नहीं है; उनकी राय आपकी राय से नहीं मिलती। क्या आप यह समझते हैं, कि आप इन सबूतों को नहीं जानते, इस लिए, दर्शनशास्त्र के पहुँचे हुए पण्डित भी नहीं जानते; अथवा, आपको इन सबूतों का पता नहीं मिला, इसलिए "बड़े बड़े आलिम और अक़लमन्द" उनका पता लगाने की अब तक कोशिशही कर रहे हैं? यह आप की सरासर ग़लती है; और बहुत बड़ी ग़लती है। आपके कहने में एक ध्वनि भी है। वह यह कि आप भी "बड़े बड़े आलिम और अक़लमन्द" आदमियों के साथ एक ही किश्ती पर सवार हैं। आपने अपना गौरव ख़ूब बढ़ाया! बेसमझ को समझाना और भूले हुए को रास्ते पर लाना पुण्य का काम है। इस कारण से, समय के व्यर्थ जाने, और काग़ज़ पर क़लम को रगड़ने, का ख़याल न करके, उस अनन्त ज्ञानवान परमेश्वर के अस्तित्व का बहुत ही संक्षिप्त सबूत देकर आपके मग़ज़ में भरी हुई नास्तिकता की बू को हम हटाने की कोशिश करना चाहते हैं। ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में जो दलील हम पेश करने जाते हैं वह तार्किकों की ऐसी दलील होगी—भक्तों, कर्म्म-काण्डियों या योगियों की ऐसी न होगी। क्योंकि "बड़े बड़े आलिम और अक़लमन्द" लोग दूसरी तरह की दलीलों को क्यों सुनने लगे? हमारी दलील इस तरह की है—

आपको ईश्वर के अस्तित्व में शङ्का है। अच्छा हम आपको अनुमति देते हैं कि जितनी चीज़ों के अस्तित्व के विषय में, आप चाहें, शङ्का करें। परन्तु शङ्का करते करते कहीं तो आपकी शङ्का ठहरैगी; कहीं पर तो आपको निःशङ्कता प्राप्त होगी। जहां आपको ज़रा भी निःशङ्कता प्राप्त हो वहां आप ठहर जाइए और इस बहस को दिल लगाकर सुनिए। शङ्का हमेशा ज्ञान से उत्पन्न होती है; केवल ज्ञानवान् व्यक्ति ही शङ्का कर सकता है। शङ्का करने के लिए उतनेही ज्ञान की ज़रूरत पड़ती जितने को कि विश्वास करने के लिए पड़ती है। स्वीकार अथवा अस्वीकार के लिए भी ज्ञान की एक सी ज़रूरत रहती है। इस लिए शङ्का की अनन्तता का होना सर्वथा असम्भव है। यह नहीं हो सकता कि किसी को सब बातों में शङ्का ही शङ्का हो। एक आध चीज़ के विषय में वह अवश्य हीं शङ्काहीन होगा। क्योंकि शङ्का अगर ज्ञान के अस्तित्व में शङ्का करने चलैगी तो उसे ख़ुद अपने भी अस्तित्व में शङ्का करना पड़ेगा। कोई

अपनी शङ्का की शङ्का नहीं कर सकता। जब वह शङ्का करता है, तब वह जानता है कि वह शङ्का कर रहा है। इस लिए, कम से कम, एक बात अवश्य ऐसी है जिसकी वह शङ्का नहीं करता। वह बात वही उसकी शङ्का है। तात्पर्य्य यह कि वह अपनी शङ्का के अस्तित्व को ज़रूर मानता है; उसमें वह कोई शङ्का नहीं करता। जिसके ज़रिये से शङ्का की जाती है उस ज्ञान की शङ्का करना मानों शङ्का के अस्तित्व में शङ्का करना है; क्योंकि ज्ञान के बग़ैर न शङ्का ही हो सकती है और न विश्वास ही हो सकता है। इसलिए ज्ञान का अस्तित्व मानना ही पड़ेगा; बिना उसके माने बचाव नहीं। बिना ज्ञान के ज्ञान का अभाव या अनस्तित्व भी नहीं जाना जा सकता। और ज्ञान से ज्ञान का अनस्तित्व मानना स्वतोविरोधी है; ज्ञान के अनस्तित्व की बात ही गोया उसके अस्तित्व को दृढ़ता से सिद्ध करती है। अतएव जहां तक आपकी इच्छा हो, आप शङ्का कीजिए; पर ज्ञान का अस्तित्व आपको मानना ही पड़ेगा; क्योंकि, बिना ज्ञानके शङ्का नहीं हो सकती।

अच्छा, तो, अब यह सिद्ध हो गया कि शङ्का करनेवाले को ज्ञान का अस्तित्व मानना पड़ता है। जब ज्ञान का होना उसने मान लिया तब उसकी सत्ता के लिए उसके अस्तित्व के लिए जो कुछ दरकार है उसे भी मान लेना पड़ेगा। जब आप किसी बात को क़बूल करते हैं, तब, उसके साथ, जबरन, आप को उन सब बातों को भी क़बूल करना पड़ता है जिनके कारण वह बात वैसी होती है जैसी कि वह है; और जिसके बिना उसको वह रूप न प्राप्त होता है जैसा कि उसे प्राप्त हुआ है। बिना ज्ञेय, (ख़याल में आने के क़ाबिल) या किसी ऐसी चीज़ के, जो ख़याल में आसके, ज्ञान समझ में नहीं आसकता; वह बुद्धि का विषय नहीं हो सकता; उसको बुद्धि नहीं ग्रहण कर सकती। बिना ज्ञेय के ज्ञान होही नहीं सकता। इस लिए ज्ञान को मान लेने से ज्ञेय को भी मान लेना पड़ता है। अतएव ज्ञेय एक ऐसी चीज़ है जो ज्ञान की उद्भावक या उत्पादक है; जो ज्ञान का आदि कारण है; जो सब पदार्थों से अधिक सारवान् और सत्तावान् है। इस से यह अर्थ निकला कि ज्ञेय का कोई कारण नहीं; वह स्वतः सिद्ध और स्वतः सत्तावान् है। अतएव ज्ञान का एक मात्र आधार और बाहर की सारी कारणीभूत उपाधियों से रहित अकेला वही सत् पदार्थ है। जितने असत्, अर्थात् कारणविशिष्ट पदार्थ हैं उनको ख़ुद कोई सत्ता नहीं; इसलिए वे बुद्धि का विषय हो नहीं हो सकते। ज्ञान और बुद्धि के द्वारा उनका अस्तित्व ही नहीं ग्रहण किया जासकता। जिस चीज़ का अस्तित्व है, या जो चीज़ सम्भव है, उसकी सत्ता, या सम्भवता, उस आदि कारण की, उस स्वयम्भूत, स्वतःसत्तावान् सत् पदार्थ ही को शक्ति से जानी जा सकती है। यदि उस सद्वस्तु की शक्ति, सत्ता या संयोग उससे खींच लिया जाय तो वह अभाव को प्राप्त हो जाय; उसका अस्तित्व ही जाता रहै; वह कुछ चीज़ ही न रहे। इसलिए उसका ज्ञान हो न हो सके; उसको बुद्धि ग्रहण ही न कर सके; क्योंकि, जो चीज़ है ही नहीं वह किसी प्रकार समझ में नहीं आ सकती। इन कारणों से ज्ञान को असलियत या आधार के लिए ज्ञेय की ज़रूरत है। उसकी सत्ता किसी तरह नहीं अस्वीकार की जा सकती; उसे क़बूल करना ही पड़ता है। और क़बूल करने के साथ यह भी क़बूल करना पड़ता है, कि वह दरहक़ीक़त ऐसी वस्तु है जिसकी सत्ता का नाश नहीं होता—पानी न रहने से भी उसकी पानीपन-रूपी सत्ता का अत्यन्ताभाव नहीं होता; उसका ज्ञान बना ही रहता है। वह ज्ञेय, वह सद्वस्तु, वह असल सत्तावान् पदार्थ या तो अविनाशी, अतएव शाश्वत, होता है; या आकस्मिक, अतएव संयोगी होता है।

इस संसार में जो कुछ है उसकी सत्ता का विचार करने से यह सूचित होता है कि या तो वह स्वतः सिद्ध, अनादि और अविनाशी है; या आकस्मिक, और संयोगी है; अतएव वह दूसरे के आधार

पर स्थित है; खुद अपनी कोई सत्ता नहीं रखता। अगर आप पदार्थों की अनादि और अविनाशिनी सत्ता को मानते हो तो उस सत्ता की शक्ति के रूप में आप ईश्वर को मानते हो; फिर उसे आप चाहे जिस नाम से पुकारें। और अगर आप यह नहीं मानते तो आकस्मिक और संयोगी पदार्थों की आधार भूत एक दूसरी सत्ता को मानना पड़ेगा। क्योंकि उसके बिना कोई पदार्थ अस्तित्व में नहीं आ सकता। बिना आधार के आधेय रही नहीं सकता। अतएव इस हालत में भी आप को एक असल सत्ता अर्थात् ईश्वर मानना ही पड़ैगा। इससे सिद्ध है कि, हर हालत में, एक अविनाशिनी शक्ति को बिना स्वीकार किये आप किसी पदार्थ के अस्तित्व को नहीं स्वीकार कर सकते। ईश्वर अनादि, अजन्मा और अविनाशी है। अतएव प्रत्येक वस्तु की असल सत्ता या शक्ति को स्वीकार करने में आप ईश्वर को स्वीकार करते हैं। जितने पदार्थ हैं उनके जानने के लिए ज्ञान दरकार है; और जब कभी ज्ञान काम में लाया जाता है, ज्ञेय कभी उससे अलग नहीं रहता। इस से सिद्ध है कि जितने ज्ञान के काम हैं सब में ज्ञेय-स्वरूप ईश्वर की सत्ता जागरूक है। उसके अस्तित्व को न स्वीकार करना खुद अपने अस्तित्व को न मानना है। कहिए, आप अपने अस्तित्व को मानते हैं या नहीं?

नास्तिक—उक्ति मात्र ही से तर्कशास्त्र का काम नहीं चल सकता; कह देने ही से कोई बात सिद्ध नहीं हो जाती।

आस्तिक—तो तर्कविद्या के विषय में आपकी इस ऊपर कही हुई उक्ति से भी काम नहीं चल सकता। आपने कब अपने कहने को सप्रमाण सिद्ध किया? मगर, जान पड़ता है कि आप तर्कशास्त्र के मानी ही नहीं जानते; आप यही नहीं समझते कि तर्कशास्त्र कहते किसे हैं। बिना उक्ति के तर्क हो ही नहीं सकता; तर्कविद्या की दीवार उक्तियों ही के ऊपर उठती है। उक्तियों ही के आसरे तर्कशास्त्र की इमारत तैयार होती है और एक खण्ड के ऊपर दूसरा खण्ड बनता चला जाता है। तर्कशास्त्र उक्तियों ही से सिद्धान्तों को स्थिर करता है। उसको इस बात की ज़रा भी परवा नहीं कि उक्ति सच्ची है या झूठी; जैसी उक्ति होती है उसके अनुसार ही वह फल की सिद्धि दिखला देता है। इससे तर्कशास्त्र का आप जो मतलब समझते हैं वह उसका बिलकुल उलटा है। तर्क को सिर्फ़ उक्तियों से मतलब रहता है; और किसीसे नहीं। आपने शायद अपने मन में "विचार" और "तर्क" इन दो शब्दों को आपस में गड्ड बड्ड कर दिया है; इनके अर्थभेद को आपने नहीं समझा। इसी कारण से आपने यह, इतनी बड़ी, ग़लती की।

नास्तिक—तर्क-शास्त्र क्या दूसरों की राय की कुछ परवा नहीं करता?

आस्तिक—अगर दूसरों की राय "उक्ति" शब्द की व्याप्ति के भीतर आ सकती है तो वह परवा करता है, और ज़रूर करता है; क्योंकि, तर्क-विद्या की भित्ति उक्तियों ही पर क़ायम है। आपको कहना था कि, विचार, विवेचन अथवा ज्ञान दूसरों की राय की परवा नहीं करता। लफ़्ज़ों के प्रयोग में आपकी इस बेपरवाही को देख कर हँसी आती है। इस बेपरवाही से यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि तर्क करने का सही सही तरीक़ा भी आप नहीं जानते। जो मनुष्य ठीक ठीक तर्क करना जानता है वह अपने ख़यालों को भी ठीक तौर पर ज़ाहिर कर सकता है। परन्तु आपका ऐसा ढीला तार्किक, सुननेवाले के मन में सन्देह पैदा कर देता है; क्योंकि; वह यही नहीं जान सकता कि आपका मतलब क्या है।

जिसको तर्कविद्या का इतना कम ज्ञान है कि वह उसका ठीक ठीक अर्थ तक नहीं जानता उसके साथ ईश्वर के होने और न होने की बाबत बात चीत करना ही बेजा है। इस लिए आप अब अपने घर पधारिए। कुछ दिन सत्संग कीजिए; सद्विद्या पढ़िये; तर्क करना सीखिए; तब आप, इस विषय में, वाद प्रतिवाद करने के लिए कमर कसिए।

अभी आप इस लायक़ ही नहीं। जिस समय ईश्वर, जिसकी हस्ती की बाबत आपको शङ्का है, आपकी ज्ञानलवदुर्विदग्धता को खो देगा उस समय आपको, इस विषय में, तर्क वितर्क करने की ज़रूरत ही न रहेगी। तथास्तु।

इति चतुर्थाध्याय।

समाप्त।

राजकुमारी हिमाङ्गिनी।

पर्वत के सबसे ऊंचे शिखर पर राजकुमारी हिमाङ्गिनी ने अपना घर बनाया। संसार के साधारण जीवों के पास रहना, या उनके साथ हँसना खेलना, उसे ज़रा भी पसन्द न आया। "सुन्दरता और गोरेपन में मैं अपना सानी नहीं रखती; फिर मैं राजकुमारिका हूं। तब भला क्यों मैं मामूली लोगों के पास बैठना पसन्द करूं? सांसारी जीवों की सङ्गति मुझे ज़रूर अपवित्र कर डालेगी"। इस तरह अपने मन में सोच विचार कर वह पहाड़ों की तरफ़ चली। वहां सबसे ऊंचे पहाड़ की चोटी पर वह जा बैठी। वहां रहते उसे कई युग बीत गये। अपनी चमक दमक और रूप-रङ्ग के गर्व से वह फूली नहीं समाई।

चिरकाल तक वह वहीं अपने सर्वाङ्गशीतल अवयवों की सुन्दरता के मद से मतवाली रही। उसका, वह, उस समय का, रूप सफेद कमल के समान सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए नई वधू के रूप को भी मात करता था। पर वहां एकान्त में अकेली रहते रहते वह ऊब उठी। धीरे धीरे उसे दूसरे की सङ्गति की चाह हुई। कुछ दिनों में, क्रम क्रम से, उसकी उत्सुकता बढ़ गई। उसने विवाह करना चाहा। पर उसके पाणिग्रहण का सौभाग्य प्राप्त हो किसे? उसे ख़ुद ही नहीं मालूम था कि कौन ऐसा भाग्यवान् युवक है जिसे उसका यौवन-रत्न मिलेगा। मारुत महाराज, पवन देव, झकोरसिंह इत्यादि राजा और राजकुमारों ने उस के साथ अनेक प्रेमालाप किये; हर प्रयत्न से उस का चित्त अपनी ओर आकर्षित करना चाहा। पर सब व्यर्थ हुआ। उनमें से एक को भी उसने पसन्द न किया। उसकी समझ में उन सबका प्रेम दो ही चार दिन का था। ऐसे कच्चे प्रेमियों को कौन कुमारिका अपना सर्वस्व दे डालने का साहस करेगी?

जलदेन्द्रबहादुर सिंह तक हिमाङ्गिनी के प्रेम के भिखारी हुए। उन्होंने उसके पास कई दूतियां भी भेजीं। उन्होंने उसको विरह-कथा की कहानियां ख़ूब ही नमक मिर्च लगा कर कही। वे अपने साथ पहनने ओढ़ने को कुछ चीज़ें भी उपहार के तौर पर लाईं। उनको हिमाङ्गिनी अब तक धारण किये हुए है। पर जलदेन्द्र भी उसे पसन्द न आये। पुरुषत्व के गुणों की उनमें ज़रा कमी नज़र आई। पुरुष वह है जिसमें शक्ति भी हो, कठोरता भी हो, धैर्य्य भी हो और समय पर दुःख, क्लेश या दूसरों की दो चार बातें सहने का भी सामर्थ्य हो। इन सब गुणों के न होने से हिमाङ्गिनी ने उसकी भी प्रार्थना स्वीकार न की। क्या करै? बेचारी चुपचाप अपने घर बैठी रही। उसका भव्य वेश, उसका रूप-लावण्य और उसका गर्वयुक्त चेहरा देखने लायक़ था। पर यौवन की ऊष्मा उसमें न थी; इससे उसका बदन ठंढे बर्फ़ के समान ठंढा था। इसीसे उसे देखकर तबीयत ख़ुश नहीं होती थी; जान पड़ता था कि उसका शरीर निर्जीव है।

यथासमय वसन्त ऋतु आई। बादल जहां के तहां उड़ गये। आसमान साफ हो गया। इतने में अनायास एक बड़ा ही सुरूपवान और गौरवर्ण युवा पहाड़ की चोटी पर दिखाई दिया। अहः, उसकी मुसकान जादू से भरी हुई थी। उसे देखते ही हिमाङ्गिनी का दिल हाथ से जाता रहा। जानते हो वह कौन था? उस नव युवक का नाम था भुवन-भास्कर सिंह। राजकुमारी हिमाङ्गिनी ने अभी अच्छी तरह उसे देखा भी न था कि वह उसके

वश हो गई। अपना शरीर, अपना मन, अपना प्राण, अपना सर्वस्व, सभी उसने उसे दे डाला। प्रेमोन्माद की गरमी से व्याकुल होकर वह सहसा पीली पड़ गई—ऐसा पीलापन उसमें पहले कभी नहीं देखा गया था। पाण्डु और कामला रोग का रोगी भी इतना पीला नहीं पड़ जाता! उसका पत्थर के समान सख्त कलेजा भीतर ही भीतर पिघल उठा। उसकी आँखों से आँसू की झड़ी लग गई। उसकी अजब हालत हो गई। एक प्रकार के आतङ्क, भय और घबराहट ने उसको घेर लिया। वह कँपने सी लगी। उसके सजीव होने और चलने फिरने की शक्ति रखने का यह पहला चिन्ह था।

हिमाङ्गिनी ने अपने पीले और मुरझाये हुए चेहरे को ऊपर उठाया और कँपकँपाते होठों के बीच से निकलनेवाली लड़खड़ाती हुई आवाज़ से उस नवयुवक से उसने वार्तालाप आरम्भ किया। प्रेम-विह्वल होने पर बलवान पुरुषों की भी अक़ल ठिकाने नहीं रहती। फिर, अबला स्त्रियों की क्या कथा? इस अवसर पर सङ्कोच और सलज्जता ने हिमाङ्गिनी को प्रगल्भता के भरोसे छोड़कर अपने घर का रास्ता लिया। तब प्रगल्भता के समझाने बुझाने पर उसे बोलने का साहस हो आया। उसने मुसकराते हुए भुवनभास्कर से इस प्रकार प्रार्थना की—

"हे मनोहारी युवक, तुम चाहे जो हो; तुमने मेरे धैर्य्य का सर्वथा नाश कर दिया। मुझे यहां रहते अनेक युग हो गये। अब तक मैं यहीं एकान्त में चुपचाप अपनी आयु क्षीण करती रही। मैं आज तक यह न जान सकी कि किस तरह मैं अपनी उम्र आराम से काटूं। आज तुम्हारे सुन्दर मुखकमल की ओर एक ही बार निहारने से मैंने वह चीज़ पा ली जिसकी हज़ारों वर्ष से मुझे खोज थी। मैं आपकी होचुकी; मैंने इसी क्षण से अपना हृदय आपको दे डाला; मैं अपना सर्वस्व आपको अर्पण कर चुकी। मुझ पर अब तुम दया करो। मेरी तरफ़ सकरुण दृष्टि से देखो। मैं एक अनाथ, निराश्रय, निराश चिर-कुमारिका हूं। मेरा जीवन आज तक बिल्कुल ही नीरस, निष्फल और कड़वा रहा। अब तुम उसे सरस, सफल और मधुर कर देने की कृपा करो"।

यह सुनकर भुवनभास्कर ने शिष्टता और प्रेम पूर्ण कोमल वचनों से इस प्रकार उत्तर दिया—

"स्वच्छ, निष्कलङ्क और सुन्दर कुमारिके! तुम्हारी कान्ति, तुम्हारे रूप रङ्ग और तुम्हारे टटकापन ने मुझे प्रसन्न किया; तुम्हारे एकान्तवास ने मुझे खिन्न किया; पर तुम्हारे ठंढे और सख्त स्वभाव ने तो मुझे मारही डाला। आज तक तुमने अपना जीवन उदासीनता और एकान्तवास में बुरी तरह काटा। प्रेम और जीवन के तत्व पर तुमने ज़रा भी विचार नहीं किया। उदासीनता और एकान्तवास को तुमने इस लिए नहीं स्वीकार किया कि प्रेम से तुम पीड़ित आ गई थी; या जीवन से तुम निराश हो गई थी। घमण्ड में आकर तुमने एकान्तवास पसन्द किया। दुनिया की नाट्यशाला में होनेवाले हज़ारों तरह के प्रेमपूर्ण अभिनयों से दूर भगकर, यहां, इस पहाड़ की चोटी, पर सब से अलग रहने के इरादे से, तुम आ बैठी। क्या तुम नहीं जानती, कि पहाड़ों पर प्रेमरूपी वृक्ष के मधुर फल चखने को नहीं मिलते? प्रेम में गरमी है; तुम में शीतलता है। प्रेम प्रवाही है—वह बह कर अपने पात्र तक पहुँचता है; तुम जड़ हो; हज़ार प्रयत्न करने पर भी तुम अपनी जगह नहीं छोड़तीं। फिर, तुम्ही कहो, इस दशा में, किस प्रकार तुम किसी की प्रेमपात्र हो सकती हो?

"अगर तुम मेरी वधू हुआ चाहती हो; मेरे प्रेम को प्रियतम पात्र बना चाहती हो; तो तुम भी मेरे समान हो जावो। ज़रा उष्णता प्राप्त करो; अपने कड़ेपन को छोड़ो; प्रवाही बन जाव; इन सुनसान पहाड़ों से नीचे उतर कर बस्ती में चलो। यदि तुम मेरे सुख दुःख में शामिल होने की इच्छा रखती हो तो जो काम मैं करता हूँ वही तुम भी

करना सीखो। मैं आकाश को प्रकाशित करता हूं; तुम पृथ्वी को अपने लावण्य से प्रकाशित करती हुई उसमें नरमी पैदा करो। उसे सरसब्ज़ और उपजाऊ बनाओ। तुमने अपने पास जो अनमोल चीज़ें छिपा रक्खी हैं उनको, राह में, जो कोई तुम्हें मिलै, उसे, परोपकार करने के इरादे से, देती जाव। सांसारिक भार को उठा लो। उसके सुख दुःख और हानिलाभ में शामिल हो जाव। सबसे हेलमेल रक्खो और अपने पवित्र आचरण से सबको पवित्र करो"।

इस प्रकार सम्भाषण करके भुवनभास्कर ने कुमारी हिमाङ्गिनी को बड़े ही प्रेम से चुम्बन किया। उसके स्पर्श से हिमाङ्गिनी को परमानन्द हुआ और वह तत्काल अपने प्रेमी की आज्ञा पालन करने के लिए प्रस्तुत होगई। वह वहां से कूद पड़ी और ऊंची ऊंची पहाड़ियों और घाटियों को पार करके पहाड़ के नीचे उतर आई। वहां से वह उछलती कूदती आगे बढ़ी। उसने अपने दिल में ठान लिया कि जब तक मैं सागरसिंह के दर्शन न कर लूंगी तब तक मैं हरगिज़ बीच में कहीं न ठहरूंगी।

हिमाङ्गिनी ने अपना प्रण पूरा कर दिखाया। इसलिए, उसपर प्रसन्न होकर, सायङ्काल, सागरसिंह के यहां आकर भुवनभास्कर ने यथाविधि उसका पाणिग्रहण किया। तब से हिमाङ्गिनी वहीं रहने लगी; और, हर रोज़, रात को, अपने प्रेमी भुवनभास्कर से मिलकर परमानन्द का अनुभव करने लगी।

समाचारपत्रों का विराट् रूप।

हे विराट्-स्वरूपिन् समाचारपत्र! आप सर्वान्तर्य्यामी साक्षात् नारायण हैं। वृत्तपत्र, वर्तमानपत्र, समाचारपत्र, गज़ट, अख़बार आदि आपके अनेक नाम और रूप हैं। अतः—"अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे"—आपको प्रणाम।

२। पत्र-व्यवहार अथवा चिट्ठी-पत्री आपके पादस्थान में हैं। आप अपने विराट् पाद-प्रहार से उसका मर्दन किया करते हैं; अथवा रद्दी काग़ज़ों की टोकरी में फ़ेंका करते हैं। पत्र-व्यवहार करनेवालों, या चिट्ठी पत्री लिखनेवालों को उत्तर देना, या न देना, आपके पाद ही की कृपा या अनकृपा पर अवलम्बित रहता है।

३। चुटकुले और हँसी ठट्ठे की बातें आपके जंघास्थान में हैं। क्यों? इसे आप ख़ुद समझ जाइए।

४। समाचार, नये नये समाचार, विचित्र समाचार और स्फुट समाचार आपके उदरस्थान में हैं। इन्हीं से आपका प्रकाण्ड, प्रलम्ब और प्रसृत पेट अकसर भरा रहता है। यदि और कुछ भी न हो तो भी आपका विराट् रूप इन्हीं के सहारे थँभा रहता है।

५। किसी तरह रुपया कमाने के लिए किताबें और दवाइयां बेचने, घड़ियां मरम्मत करने और एजंसी इत्यादि खोलने की युक्तियां निकालते रहना आपके हृदयस्थान में हैं।

६। छोटे बड़े, तरह बेतरह के लीडर (टिप्पणियां) आपके पृष्ठ स्थान में हैं। इन्हें आपके पीठ की रीढ़ कहना चाहिए। जो वे न हों तो आपका विराट् रूप कुबड़ा हो जाय।

७। विज्ञापन की छपाई और अपने मूल्य आदि के नियम आपके बाहु स्थान में हैं; क्योंकि उनकी घोषणा आप सबसे पहले ऊर्ध्वबाहु होकर करते हैं।

८। स्थानीय समाचार आपके कण्ठ स्थान में हैं।

९। मुख्य लेख आपके मुख स्थान में हैं।

१०। अपने प्रेसकी पुस्तकों के विज्ञापन आपके नेत्रस्थान में हैं; क्योंकि उनकी तरफ़ आपकी हमेशा निगाह रहती है।

११। अँगरेज़ी अख़बारों से लेख, ख़बरें और तसवीरें नक़ल कर लेना आपके शीर्ष स्थान में हैं। इस काम को आप सिर के बल करते हैं।